हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष १५, अंक ५७, जनवरी २०१३ • Year 15, Issue 57, January 2013

इस अंक में

●सम्पादकीय 04
●उद्गार 06

साक्षात्कार

●राजेन्द्र यादव (लालित्य ललित) 11

कहानियाँ

●गाँठ : विकेश निझावन 14
●सौदागर : रीता कश्यप 17
●चेंज यानी बदलाव : डॉ. स्वाति तिवारी 21

आलेख

●व्यंग्य: हरीश नवल 25
●संस्मरण: शशि पाधा 27
●संस्मरण: जगदीश किंजल्क 30

ग़ज़लें

●अंकित सफ़र 39
●गौतम राजरिशी 39
●सौरभ शेखर 39

हाइकु

●डॉ. शैल रस्तोगी 40
●कृष्णा वर्मा 40
●ज्योत्स्ना शर्मा 40

नवगीत

●डॉ. जगदीश व्योम 41
●पूर्णिमा वर्मन 41

कविताएँ

●युद्ध : सुदर्शन प्रियदर्शिनी 42
●उन्होंने कहा है : गुलशन मधुर 42
●नज़र : डॉ. चन्द्र सूद 42
●मैं बहुत सोचता: मंजु मिश्रा 42
●माँ : कविता मालवीय 43
●तेरे बाद.... : शैफाली गुप्ता 43
●उजड़ी बस्ती: नन्दलाल भारती 43

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
वर्ष : १५, अंक : ५७,
जनवरी-मार्च २०१३
मूल्य : ५ डॉलर ($5)

●कुलच्छनी : रजनी नैय्यर मल्होत्रा 43
●प्रदूषण: अनिल प्रभा कुमार 44
●अस्तित्व: रेनु यादव 44
●हमारा सोचना: प्रमोद ताम्बे 44

लघुकथाएँ

●अंकुश्री अपनी अपनी व्यवस्था 45
●ज्ञानदेव मुकेश बड़ा आदमी 45
●डॉ. हरदीप कौर संधु सुन्दर हाथ 45

लम्बी कहानी

●वरांडे का वह कोना नरेन्द्र कोहली 46

स्तंभ

●अविस्मरणीय : महाकवि जयशंकर प्रसाद 31
●विश्वविद्यालय के प्रांगण से: निकोलस पोलाज़ेक 31

इस अंक में

●दृष्टिकोण: मो. आसिफ़ 32
●भाषान्तर : जय राई छांछा अर्जुन निराला 34
●विश्व के आँचल से : विजय शर्मा 35

●पुस्तक समीक्षा : अखिलेश शुक्ल 51
दस युवा कहानीकार 52
●डायरी के पृष्ठ: डॉ. कुसुम नैपसिक 54
●पुस्तकें जो हमें मिलीं: 56
●हम साथ साथ हैं: हमसफ़र पत्रिकाओं के नये अंक 57
●साहित्यिक समाचार: 58
●अधेड़ उम्र में थामी क़लम: वनीता सेठ 61
●नव अंकुर: ममता शर्मा 61
चित्रांश सक्सेना 62
●विलोम चित्र काव्यशाला 63

●चित्र काव्यशाला 64

आख़िरी पन्ना

●सुधा ओम ढींगरा 65

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिये हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- हिन्दी चेतना जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी ।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।
- रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा ।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं ।
संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक

श्याम त्रिपाठी , कैनेडा

सम्पादक

सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सह-सम्पादक

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत

पंकज सुबीर, भारत

अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल

पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत

(मुख्य संपादक, पंजाब केसरी पत्र समूह)

कमल किशोर गोयनका, भारत

पूर्णिमा वर्मन, शारजाह

(संपादक, अभिव्यक्ति- अनुभूति)

अफ़रोज़ ताज, अमेरिका

(प्रोफ़ेसर-यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलाईना, चैपल हिल)

निर्मला आदेश, कैनेडा

विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी

सरोज सोनी, कैनेडा

राज महेश्वरी, कैनेडा

श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि

डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान भारत

चाँद शुक्ला 'हदियाबादी' डेनमार्क

अनीता शर्मा, शिंघाई, चीन

दीपक 'मशाल', यूके

अमित कुमार सिंह, भारत

अनुपमा सिंह, मस्कट

नुकीली पत्तियों ने मुस्कुरा कर घोषणा कर दी,
हवाएँ, जो हमें कमज़ोर कहती हों चली आएँ,
हमारी चेतना में इंद्रधनुषी भाव आते हैं,
कभी कुछ सन्दली आएँ, कभी कुछ मख़मली आएँ।

-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

: आवरण :

अरविंद नारले, कैनेडा arvind.narale@sympatico.ca

: डिज़ायनिंग :

सनी गोस्वामी, पी सी लैब, सीहोर sameergoswami80@gmail.com

Printed By: www.print5express.com

संपादकीय

आप सभी को यह जानकर अत्यंत हर्ष होगा कि 'हिन्दी चेतना' अपने 15वें वर्ष में पदार्पण कर रही है । नव वर्ष के नए सवेरे की नूतन किरणों के साथ यह अंक आपके समक्ष होगा ।

हमें भली-भाँति वह दिन याद है जब व्यक्तिगत ईर्ष्या रखनेवाले कुछ हिन्दी प्रेमियों ने 'हिन्दी चेतना' को बंद कराने की धमकी दी थी । हम सीमित साधनों में इसे अंतरराष्ट्रीय पत्रिका बनाना चाहते थे और हमारे परम मित्र, जिन्हें हमसे बहुत प्यार था, इसे कैनेडा और उत्तरी अमेरिका की पत्रिका भी नहीं रहने देना चाहते थे। किन्तु हमने इसकी ओर ध्यान न देते हुए आत्मबल के सहारे, नए समाज, नए देश जहाँ राजनैतिक, सामाजिक, और अनेकों विपरीत परिस्थितियाँ हैं, विदेश की धरती पर 'हिन्दी भाषा' का वृक्ष लगा ही लिया। विशेषकर जहाँ अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषाएँ राजपदों पर विराजमान हैं और दैनिक जीवन के सम्पर्क की भाषाएँ हैं । वहाँ पर 'हिन्दी भाषा' की बात खीर में नमक डालने जैसी लगती है । चारों ओर अंग्रेज़ी का वातावरण है । पुस्तकों की दूकानों पर हिन्दी की कोई पुस्तक दिखाई नहीं पड़ती । हालांकि, यहाँ की सरकारें बहुसंस्कृति और बहुभाषी विचारों की समर्थक हैं ।

भारत की तरह यहाँ भी दो भारत बसते हैं, एक वर्ग भाषा, संस्कृति और भारतीयता के रंग में रंगा हुआ है, जिसके बल पर हिन्दी की पत्रिकाएँ चल रही हैं और दूसरा पूरी तरह से विदेशी हो चुका है। अधिकतर भारतीयों का हिन्दी के प्रति बहुत ही उदार व्यवहार देखा गया है । कुछ पाक्षिक समाचार पत्र हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होते हैं, और केवल विज्ञापनों के आधार पर चलते हैं तथा मुफ़्त बाँटे जाते हैं । कैनेडा और उत्तरी अमेरिका में अधिकतर हिन्दी भाषी उच्च पदों पर विराजमान हैं, समय-समय पर वे अपना सहयोग अपनी भाषा को देते रहते हैं पर भारत सरकार के दूतावास में हिन्दी का कोई महत्त्व नहीं । हमने जब-जब उन्हें पत्रिका के विशेषांक के लिए उनके संदेश का निवेदन किया, उनकी शुभकामनाएँ शुद्ध अंग्रेज़ी में ही प्राप्त हुईं।

पाठक इससे यह न सोचें कि विदेशों में हिन्दी की दशा शोचनीय है, नहीं .....ऐसा नहीं है। हिन्दी के प्रचार -प्रसार के लिए बहुत कार्य हो रहा है...बहुत सी संस्थाएँ और बहुत से लोग जुड़े हुए हैं। यह बात अलग है कि मुझे और हिन्दी चेतना के अनुभव कटु हैं, पर यह भी निस्संकोच कहूँगा कि हिन्दी प्रेमियों ने ही इसे आज 15 वें वर्ष में प्रवेश करवाया है।

15वें वर्ष में प्रवेश करते ही बहुत सी बातें सुधियों की तंग गलियों को पार कर सामने आ खड़ी हुईं हैं .....वह संघर्ष, वह अपमान, वह पीड़ा जो हिन्दी चेतना को यहाँ तक पहुँचाने में मुझे सहनी पड़ी और उनसे प्राप्त अनुभव हिन्दी चेतना की विकास यात्रा में सहायक हुए। हिन्दी चेतना के आरंभिक काल में कुछ समय तक कैनेडा के प्रमुख लेखकों की रचनाएँ मैंने स्वत: हस्तलिखित पत्रिका में संकलित कर और फोटो कापी करके पाठकों तक पहुँचाई। फिर कम्प्यूटर सीखा और न जाने कितने ही 'फ़ॉन्ट्स' बदले और इस क्षेत्र का अनुभव प्राप्त किया । कितने ही प्रिंटरों के चक्कर लगाये जो हिन्दी का काम करने से बचते थे । और पाठकों के घर-घर जाकर पोस्टमैन की भूमिका भी निभाई । उस समय इसका रूप और कलेवर बिल्कुल साधारण था बस मन में लगन थी और लक्ष्य बहुत ऊँचा, बेन यहूदा की तरह ।

चिंतित था कि इतना बड़ा कार्य तो अपने हाथ में ले लिया, बिना किसी अनुभव और जानकारी के । हमारा उद्देश्य था विदेश की धरती पर हिन्दी लेखकों को एक मंच प्रदान करना, हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार-प्रसार तथा विश्व के लेखकों को एक संपर्क सूत्र में बांधना । यह मेरा स्वप्न था कि मैं हिन्दी की पत्रिका प्रकाशित कर देश और भाषा का ऋण उतार सकूँ । मैं उन्हीं दिनों शिक्षा के क्षेत्र से सेवा निवृत्त हुआ था और मेरे पास समय ही समय था । मैं तन मन धन से इस कार्य में जुट गया । मेरे छोटे बेटे विशाल का मुझे बहुत सहयोग मिला । वह छठी कक्षा में पढ़ता था और मेरे साथ रात को देर तक जागकर हिन्दी चेतना के पृष्ठों को कम्प्यूटर पर सेट करता और फिर उसकी कच्ची कॉपी बनाता । अकेले ही काम करने के कारण काफ़ी पठनीय अशुद्धियाँ रह

जातीं । फिर लेखकों और पाठकों की शिकायतें, उनकी कटु आलोचना और अपमानजनक फटकार मिलती । कई बार तो मुझ पर मुकद्दमा करने की धमकियाँ भी दी गईं । लोग पत्रिका के सदस्य बन जाते किन्तु अपना शुल्क न देते । सालों साल मुफ्त में पत्रिका पढ़ते और जब उनको रिमाइंडर भेजता तो उत्तर में मुझे रोब के साथ नोट आता 'पत्रिका मत भेजना ।' परन्तु, कुछ हिन्दी प्रेमी और दयालु व्यापारियों ने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि मेरा विज्ञापन लगाएँ और जब तक यह पत्रिका चलेगी मैं आपके साथ हूँ । ईश्वर की कृपा से वे आज भी हमारे साथ हैं । पत्रिका पूरी दुनिया में पढ़ी जाती है और रचनाएँ भी पूरे विश्व से आती हैं ...अब मुद्रण के साथ-साथ ऑन लाइन पत्रिका भी उपलब्ध है। हिन्दी प्रेमी और रचनाकार जिन्होंने कभी मुझे निरुत्साहित किया था, अब साथ हो लिये हैं।

शुरू-शुरू में मुझे पूरा विश्वास था कि हिन्दी की स्थानीय संस्थाएँ हमें सहयोग देंगी पर सबसे अधिक निराश मुझे इन्हीं हिन्दी संस्थाओं ने किया । राजनीति और उनकी संकीर्ण विचारधारा उन्हें इसके साथ जोड़ न सकी। मैंने देखा कि वे तो केवल अपना नाम और यश चाहते हैं तथा हिन्दी चेतना के माध्यम से अपने स्वार्थों की पूर्त्ति करना चाहते हैं, उनका सरोकार स्वयं को बढ़ाना है। इस तरह के कई अनुभव हुए, विपरीत परिस्थितियों के होते हुए भी मैं अपने मार्ग पर अटल रहा और हर तरह की चुनौतियों से जूझते हुए, मैंने पत्रिका का प्रकाशन जारी रखा।

2006 का वर्ष हिन्दी चेतना के इतिहास में स्मरणीय मोड़ के रूप में याद रहेगा । इसके बाद पत्रिका के परिवर्तन का नया अध्याय शुरू हुआ। जब मेरे अभिन्न मित्र छोटे भाई गजेन्द्र सोलंकी ने मुझे सुधा ओम ढींगरा से मिलवाया जिन्हें पत्रकारिता का वर्षों का अनुभव है और लेखनी में जादू। वे स्वयं अपनी एक पत्रिका निकालने की योजना बना रही थीं। मेरे कहने पर उन्होंने हिन्दी चेतना के साथ जुड़ना स्वीकार किया। उन्होंने पत्रिका की कार्य प्रणाली को जाना,पत्रिका की ज़रूरतों, पत्रिका की चुनौतियों, पत्रिका के दर्शन को समझा। कमियों को परखा, मज़बूत हिस्सों को तौला। हिन्दी चेतना को ऐसे ही व्यक्तित्व की तलाश थी जो हिन्दी चेतना को एक नई दिशा देने में सहायक हो। सुधा जी मेरी तरह हिन्दी के प्रति समर्पित, जुनूनी, कर्मठ और निस्वार्थ भाव से काम करने वाली हैं। इन्हीं समानताओं के चलते हम दोनों वर्षों से काम कर रहे हैं ....। गत वर्ष से वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', प्रतिष्ठित कवि एवं कहानीकार पंकज सुबीर का हमारी टीम के साथ जुड़ना 'हिन्दी चेतना' के लिये सौभाग्य की बात है । चित्रकार अरविन्द नारले जी पहले दिन से हमारे साथ हैं और लोकप्रिय कवि अभिनव शुक्ल कुछ वर्षों से हमारी टीम में हैं । इन सबकी ऊर्जा ने हमें बहुत ऊर्जावान कर दिया है । पत्रिका के 14 वर्षों की यात्रा तो बहुत संघर्षमयी, रोमांचकारी एवं प्रेरणात्मक है, यह तो विकास की संक्षिप्त सी झलक है, इन पूरे वर्षों में पाठकों ने जो प्रोत्साहन हमें दिया उसके लिए कृतज्ञ हूँ.... और आशा करता हूँ कि आगे भी इसी तरह आपका सहयोग हमें मिलता रहेगा .....

नव वर्ष की शुभकामनाओं के साथ .....

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://kathachakra.blogspot.com

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
पर जाकर

आपका

श्याम त्रिपाठी

उद्गार

'हिन्दी चेतना' के 'लघुकथा अंक' की पीडीएफ़ फाइल नेट पर देखने को मिली और प्रसन्नता के साथ-साथ एक संतोष की भी अनुभूति हुई। सन्तोष इसलिए कि लघुकथा पर यह अंक खानापूर्ति करने के लिए विदेश की किसी हिन्दी पत्रिका ने नहीं निकाला है। इसके संपादन का उत्तरदायित्व आपने जिन दो हिन्दी लेखकों को सौंपा, उन दोनों ने न केवल हिन्दी में श्रेष्ठ लघुकथा लेखन किया, बल्कि इस क्षेत्र में समर्पित भाव से लघुकथा के विकास और संवर्धन के लिए भी वर्षों से कार्यरत रहे हैं और अभी भी पूर्ण रूप से सक्रिय हैं, भले ही ये साहित्य की अन्य विधाओं में भी समान रूप से लेखन करते रहे हैं और कर रहे हैं। भाई सुकेश साहनी और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी ने जिस सूझबूझ से इस अंक का संपादन किया है और श्रेष्ठ व मानक लघुकथाओं का चयन किया है, वह नि:संदेह इस अंक को संग्रहणीय बनाता है। संपादक द्वय ने लीक पर लीक खींचने की कोशिश नहीं की है, अपितु इस क्षेत्र में अब तक किए गए कार्य के आगे अपनी नई और बड़ी लकीर खींच दी है। इस अंक का मैं इसलिए भी अधिक महत्त्व समझता हूँ, कि विदेशों में बैठे नये-पुराने लेखकों में 'लघुकथा' को लेकर जो संशय व्याप्त हैं, वे इस अंक से संभवत: दूर हो जाएँगे और उन्हें इस अंक की रचनाओं से पता चलेगा कि अच्छी और श्रेष्ठ लघुकथा क्या होती है और आज समकालीन लघुकथा कहाँ पर खड़ी है। मेरा मानना है कि अच्छी और श्रेष्ठ रचनाओं के उपलब्ध होने पर और उन्हें नये लेखकों द्वारा पढ़े जाने पर नि:संदेह उनके अपने लेखन में सुधार होता है और उन्हें एक दृष्टि भी मिलती है। यूँ तो कोई भी काम शत प्रतिशत मुकम्मल नहीं होता, कुछ न कुछ कमियाँ किन्हीं कारणों से रह ही जाती हैं। पर ऐसे काम करने वालों के काम के पीछे अच्छा काम कर दिखाने की उनकी ईमानदारी, नीयत और लगन का बहुत बड़ा हाथ होता है, वे सीमित संसाधनों में, अपना श्रेष्ठ से श्रेष्ठ देने, अपने काम को अधिक से अधिक उत्कृष्ट बनाने में अपनी सारी ऊर्जा और शक्ति लगा देते हैं। यदि इस अंक की पृष्ठ संख्या सौ होती तो नि:संदेह इसमें 'हिन्दी लघुकथा' पर कुछ और महत्त्वपूर्ण आलेख जा सकते थे, कुछ और श्रेष्ठ लघुकथाओं को लिया जा सकता था। लेकिन, फिर भी 'हिन्दी चेतना' का यह अंक जिस खूबसूरती से और सशक्त सामग्री के साथ निकला है, वह कोई कम उल्लेखनीय काम नहीं है। मैं हिन्दी चेतना की टीम को, दोनों अतिथि संपादकों को हार्दिक बधाई देता हूँ।

-सुभाष नीरव
372, टाइप -4, लक्ष्मी बाई नगर
नई दिल्ली-110023

●

'हिन्दी चेतना' का अक्टूबर -दिसंबर 2012 का 'लघुकथा विशेषांक' देखा । बहुत पसंद आया। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें। लिखना तो आपको कई दिन पहले ही चाहती थी पर ख़राब स्वास्थ्य के चलते विलम्ब हुआ । इतने खूबसूरत अंक का हिस्सा बन कर मुझे भी बहुत प्रसन्नता हुई । कसे और कुशल संपादन से सजी यह पत्रिका निश्चय ही संग्रहणीय है । सभी लघुकथाएँ एक-से-बढ़ कर एक हैं । आधारशिला के अंतर्गत शामिल लघुकथाओं को पढ़कर तो बहुत आनंद आया । काम्बोज जी का आलेख बहुत गहन जानकारी समेटे है, उनकी रचना प्रक्रिया की यादों का हिस्सा पाठक भी स्वत: ही बन गया, आभार । लघुकथा पर आधारित परिचर्चा भी बहुत पसंद आई । लघुकथाओं को संपादन के अंतर्गत अलग-अलग श्रेणियों में बाँटना संपादक का उससे गहरा जुड़ाव दर्शाता है । सभी लघुकथाकारों को उनकी सशक्त लघुकथाओं के लिए बहुत बधाई ।

इस अंक को देखकर मैं अपना एक विनम्र सुझाव देना चाहती हूँ, यदि इस अंक को एक संग्रह का रूप दिया जाए तो कैसा हो ? मेरे विचार से लघुकथा प्रेमियों और सुधी पाठकों के लिए यह एक अनमोल तोहफ़ा साबित होगा ।

हमेशा की तरह अगले अंक की बेसब्री से प्रतीक्षा है ।

शुभकामनाओं सहित,
-प्रियंका गुप्ता
कानपुर (भारत)

●

हिन्दी प्रचारिणी सभा कनाडा की त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना के नव लघुकथा विशेषांक' को साहित्य के भवसागर के सुविस्तारित पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण के आयामों के 'संगम' के रूप में उद्धृत करना बिलकुल अतिशयोक्ति नहीं होगा ।

हिन्दी चेतना -अंक अक्टूबर २०१२ - लघुकथा विशेषांक एक ऐसी साहित्यिक पत्रिका है जिसमें आप भारतीय साहित्य के प्रसारित समृद्ध वैभव से परिचित होते हैं ! सौ से अधिक लघुकथाएं,पुस्तक समीक्षाएं, चित्र काव्य से संपन्न ये पत्रिका मनोहारी ज्ञानवर्धक और सुगम संवाद से परिपूर्ण है ! आप इस पत्रिका के माध्यम से हिन्दी साहित्य के प्रस्फुटित उन मोतियों से परिचित होते हैं ,जो सात समुन्दर पार भी साहित्य के प्रति, अपनी हिन्दी चेतना को मरने ही नहीं दे रहे ,अपितु इसके सुविस्तार में पूर्ण रूप से एकाग्र प्रयत्नशील है !

पत्रिका जीवन की रंगोली को घोले हुए है, आप पत्रिका के प्रथम पृष्ठ खोलते ही पत्रिका साज-सज्जा,रूपरेखा,सम्पादन,और उसमे निहित लेखन सामग्री,और लेखों की गुणवत्ता से स्तब्ध हो जाते है ! संपादकगण को मैं इस पत्रिका के लिए उनका धन्यवाद करता हूँ !

-चन्दन राय (भारत)

●

आपने विधा-केंद्रित विशेषांक और ख़ासकर लघुकथा विशेषांक निकालकर एक रिक्त स्थान को भरा है। दरअसल, विधा-केंद्रित विशेषांक कई मायनों में अधिक उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय होता है। विधा-केंद्रित विशेषांक के जरिए विधा-विशेष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सामने आ जाती है। विधा-विशेष में लेखन की लीक और धारा का पता चल जाता है और कहाँ और किस बिंदु पर उसमें परिवर्तन आया, इसकी आद्योपांत सूचना एक दृष्टि में मिल जाती है। संपूर्ण विश्व-साहित्य को खंगाले बग़ैर उसकी स्पष्ट झलक मिल जाती है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विधा-विशेष में लेखन की दिशा और लीक क्या है। सचमुच, पत्रिकाओं का विधा-केंद्रित विशेषांक अत्यंत उपादेय होता है। ऐसा शोधार्थियों के लिए भी बड़ा उपयोगी होता है। 'हिन्दी चेतना' का यह

विशेषांक लघुकथा पर शोध कर रहे शोधार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण साबित होगा। यह आप जैसे सचेत संपादकों के परिश्रम का सुपरिणाम है।

'हिन्दी चेतना' का यह लघुकथा विशेषांक विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में चर्चा का विषय बना हुआ है। बड़े ही वर्गीकृत और प्रणालीबद्ध रूप में इस विशेषांक को सजाया-संवारा गया है। लघुकथा लेखन का कालाधारित लेखा-जोखा इस विशेषांक के जरिए मिलता है। यह बहुत ही उपयोगी साहित्यिक दस्तावेज़ बन पड़ा है। मेरी ओर से ऐसे उत्कृष्ट विशेषांक के लिए बधाइयाँ स्वीकारें!

-डॉ. मनोज श्रीवास्तव (भारत)

●

'हिन्दी चेतना' का लघुकथा विशेषांक पढ़ा। वाकई बहुत सार्थक,पठनीय और संग्रह करने योग्य है यह अंक....एक-एक लघुकथा जीवन के सरोकारों से परिचय कराती है....मन को आंदोलित करती है, कुछ कहने को विवश करती है। आपको और आपकी पूरी टीम को साधुवाद

-ज्योति खरे (भारत)

●

'हिन्दी चेतना' का अक्टूबर २०१२ अंक पीडीएफ़ रूप से मिल गया है। हार्दिक बधाई। अंक को बहुत ही सूझबूझ से सजाया है। आधारशिला, देशांतर, अविस्मरणीय, नई ज़मीन, संपदा, स्वागतम, मेरी पसंद, आदि के बाद एक लम्बी और सार्थक परिचर्चा का आयोजन भी किया गया है। अतिथि सम्पादक रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' एवं सुकेश साहनी बधाई के पात्र हैं। इस परिचर्चा में सुभाष नीरव, डाक्टर सतीश दुबे, डाक्टर सतीश राज पुष्करणा, भगीरथ, श्याम सुंदर अग्रवाल, डाक्टर श्याम सुंदर दीप्ति आदि ने लघुकथा के विकास एवं वर्तमान स्थिति अर्थपूर्ण चर्चा की है ।

त्रिपाठी जी ने अपने सम्पादकीय में भाषा को लेकर अच्छा मुद्दा उठाया है और सुधा जी ने भी पत्रों को लेकर बहुत interesting बात रखी है। विदेश से छपने वाली पत्रिका से भारत के लेखक को मानदेय मिलने की उम्मीद होना समझ आता है। मगर हमारे संघर्ष की गाथा क्योंकि किसी पत्रिका में प्रकाशित नहीं होती, इसलिए कोई भी समझ नहीं पाता कि हम जो काम विदेशों में कर रहे हैं, वो केवल दीवानगी है।

बस एक कमी खली-पूरे अंक में भारतीय उपमहाद्वीप के महान कहानीकार मंटो की एक भी लघुकथा आप ने शामिल नहीं की। मंटो से बड़ा लघुकथाकार शायद ही कोई दूसरा हुआ होगा।

-तेजेन्द्र शर्मा (यूके)

●

इस बार का 'हिन्दी चेतना' का अंक पठनीय तो है ही, साथ ही इसमें देश-विदेश के नामचीन कथाकारों की उम्दा रचनाओं का संयोजन भी है। अंक की साज-सज्जा पर अगर थोड़ा ध्यान और दिया जाए तो पत्रिका का कलेवर और बेहतर हो जाएगा।

-अंकिता मिश्रा, वर्धा, महाराष्ट्र

●

'हिन्दी चेतना' का ताज़ा लघुकथा अंक मिला-आभार-देशी-विदेशी कथाएँ पढ़ कर अति प्रसन्नता हुई कि देश से इतनी दूर बैठकर भी आप हिन्दी सेवा में संलग्न हैं । पत्रिका का स्तर एवं इस अंक की रचनाएँ प्रभावी लगीं-बधाई। रचनाओं में सब कुछ तो कभी स्तरीय नहीं होता ...चाहे वह सुप्रसिद्ध लेखक की रचना हो। यथा ख़लील जिब्रान तथा हाई दाइक्वान की रचनाएँ साधारण थीं जबकि चेख़व की रचना उत्कृष्ट एवम भारतीय लेखकों की रचनाएँ ..रोटी व धूप मुझे उच्चकोटि की लगीं।

-डॉ. श्याम गुप्त, लखनऊ

●

मैं 'हिन्दी -चेतना' पिछले १० सालों से नियमित रूप से पढ़ रही हूँ । जब मैं छोटी थी तो कभी-कभी मेरी माता जी मुझे धर्मयुग दिखाती थीं । आज मैं जब इस पत्रिका को देखती हूँ तो मुझे धर्मयुग याद आ जाता है । यह पत्रिका हिन्दी की इस विदेश की धरती से जो सेवा कर रही है बहुत ही सराहनीय है । मैं हर तीन महीने बाद इसकी प्रतीक्षा करती हूँ और जैसे ही नया अंक मेरे पास आता है मैं मन्त्र मुग्ध हो जाती हूँ । आपका लघुकथा विशेषांक तो कमाल का है । लघुकथाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि पढ़ते ही जाओ । सारी सामग्री बहुत ही नपी-तुली और ऊँचे स्तर की होती है । मैं आपके सभी सहयोगियों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने इस स्तर को कायम रखा।

-नीरा शर्मा (कैनेडा)

●

'हिन्दी चेतना' का लघुकथांक पढ़ने को मिला। एक बेहद स्तरीय और प्रभावशाली अंक है यह। हिमांशु जी और सुकेश जी बेहद सुलझे हुए लघुकथाकार तो हैं ही, उनका संपादन भी व्यापक दृष्टिकोण और अनुभवों से संपुष्ट होता है। दोनों ने साथ-साथ लघुकथा पर काफी काम किया है, लघुकथा में दोनों के योगदान को हर स्तर पर याद किया जाता है। उनका अनुभव इस विशेषांक की लघुकथाओं के चयन और प्रस्तुतीकरण-दोनों में झलकता है। कई चीजें, जो विमर्श का हिस्सा होती हैं, सम्पादन का हिस्सा बनकर सामने आई हैं। अनेकानेक बधाइयाँ।

-उमेश महादोषी
रुड़की (उत्तराखंड)

●

'हिन्दी चेतना' का जुलाई-सितम्बर 2012 अंक डाक से मिला। पूरा अंक मनोरंजन एवं जानकारी से भरा था। जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि हमारी इस प्रिय पत्रिका को श्रेष्ठ संपादन के लिए सम्मानित किया जा रहा है ... आप सभी को मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार हो। सम्पादकीय में श्री श्याम त्रिपाठी जी ने सही ही लिखा है कि विदेशों के रचनाकार अभी तक भारत की साहित्यिक राजनीति से दूर हैं ...मेरी दुआ है कि आप लोग राजनीति से सर्वदा दूर रहें केवल साहित्य अर्चन करते रहें ... भारत में तो साहित्य कई खेमों में विभक्त है, इस अंक में आपने श्री तेजेन्द्र शर्मा का साक्षात्कार छापा है, जिससे उनको जानने की जिज्ञासा शांत हो गयी है, उन्होंने सत्य ही कहा है कि विदेशों में रहने वाले लेखकों को तो प्रवासी कहा जा सकता है, किन्तु उनके साहित्य को प्रवासी कहना उचित नहीं होगा। उनकी इस बात में भी दम है कि हमें खोजना होगा कि विदेशों में रहने वाला कौन लेखक अच्छा नहीं लिख रहा है ।

विवेक मिश्र ने 'घड़ा' कहानी लिख कर कमाल कर दिया है, गाँव की परेशानियों, मन में दबी घड़े की स्मृतियों के साथ लेखक ने पूर्ण न्याय किया है। बलराम अग्रवाल ने 'काला समय' कहानी में घर के सदस्य की बहादुरी, भारतीय पुलिस का क्रियाकलाप का मार्मिक चित्रण किया है। सचमुच नरसिंह का मरना उत्सर्ग ही था, उमेश अग्निहोत्री ने 'वह एक दिन' कहानी में बुज़ुर्गों की

स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है ये कहानी आधुनिक परिवेश में आत्मीयता के संकुचित होते जा रहे दायरे को परिभाषित करती है ,सत्य है कि युवा लड़कों के पास बुज़ुर्गों के लिए समय ही कहाँ है? कथा दिल को छू जाती है।

'कोमा' कहानी में श्याम सखा श्याम दिल को झकझोर देते है...एक पत्नी की पीड़ा... मरने वाले का दु:ख...रोंगटे खड़ा कर देता है.....संस्मरण के अंतर्गत बिदाई पढ़ के दिल यही पूछता है कि ये युद्ध क्यों? क्या कभी युद्ध बंद नहीं हो सकता?

'अमेरिका की कवयित्रियों की मनोभूमि' में डॉ.अनीता कपूर ने अच्छी जानकारी दी है... इतने सारे लेखकों को एक मंच पर ला कर पाठकों से रूबरू करा दिया है जिससे ज्ञानवर्धन होता है ...ये परिचय आत्मीय भी लगा, लेखिका को बधाई! एमी में आस्था नवल ने दिल छू लिया है, पढ़ कर आँखे नाम हो जाती हैं। औरत चाहे हिंदुस्तान की हो या सात समंदर पार की उसका दु:ख एक ही है...

विष्णु सक्सेना का गीत भी समां बांध देता है,

अंत में 'आख़िरी पन्ना' जो बड़ी बहन की भूमिका निभा जाता है .....आप की चिंता लाज़मी है, हिन्दी की पुस्तकों का पाठक सिकुड़ रहा है ....आप ने जो सुझाव दिए है यदि उनपे समय रहते नहीं चेता गया तो निस्संदेह हिन्दी की पुस्तकें अलमारी में बंद हो जाएँगी.....।

-आर.एन. त्रिपाठी, हाजीपुर, वैशाली

●

कौन कहता है कि हिन्दी का विकास हिन्दी क्षेत्र में रहकर या फिर दिल्ली में बैठकर ही किया जा सकता है, साहित्यकार हिन्दी क्षेत्र से बाहर रहकर भी अपना और हिन्दी जगत् का विकास कर सकता है। साहित्य के क्षेत्र में इस अमूल्य योगदान को मेरा सादर नमन .....धन्यवाद...

-डॉ. रेनू यादव (भारत)

●

इस सुंदर अंक के लिए पत्रिका के मुख्य संपादक और आप सभी को हार्दिक बधाई। भविष्य में इसी तरह के विशेषांक साहित्य की अन्य विधाओं पर भी निकालें। इसी शुभकामना के साथ–

-अवनीश सिंह चौहान (भारत)

●

'हिन्दी चेतना' के जुलाई–सितम्बर और 'नया लघुकथा विशेषांक' देखा। सभी सामग्री स्तरीय एवं रुचिकर लगी। बहुत बधाई आप को सुंदर संयोजन के लिए ।

-सुबोध श्रीवास्तव (भारत)

●

लघुकथा विशेषांक के लिए कृपया मेरी बधाई लें। इसके संयोजन, संपादन के लिए 'हिन्दी चेतना' परिवार को मेरी ओर से साधुवाद। आपके आख़िरी पन्ने को भी देखा और 'मानदेय' सम्बन्धी आपका स्पष्टीकरण भी। मैं उस प्रश्न के साथ भी हूँ और आपके स्पष्टीकरण को भी मंज़ूर करता हूँ। मेरी शुभकामनाएँ हिन्दी चेतना के साथ हैं। नए वर्ष की प्रतीक्षा है जब नए अंक के साथ हम मिलेंगे ।

-सतीश जायसवाल (भारत)

●

'हिन्दी चेतना' नेट पर देखी और कुछ कहानियाँ पढ़ीं। आख़िरी पन्ने में आपकी लेखनी का कौशल भी पढ़ा। उसमें आपने मानदेय की जो बात लिखी है एकदम सही है। लोग एक रचना भेजेंगे और सोचेंगे कि बहुत बड़े लेखक हैं, उन्हें संग–संग परिश्रमिक मिलना चाहिए।

-शकुन त्रिवेदी, संपादक -दी वेक

●

इस समय मैं ऑस्ट्रेलिया में हूँ ।आपका प्रेषित किया 'हिन्दी चेतना का लघुकथा अंक' मिला । हर अंक दूसरे से बढ़कर होता है –अब मैं नए शब्द कहाँ से लाऊँ –पुनरावृत्ति में सौंदर्य कुछ कम हो जाता है।

इतने कुशल सम्पादन और इतनी सुंदर प्रस्तुति के लिए आपकी पूरी टीम प्रसंशा की पात्र है । बहुत बहुत बधाई ।

-मृदुल कीर्ति (ऑस्ट्रेलिया)

●

काफी समय से आपको पत्र लिखने की सोच रहा था लेकिन ..! यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप देश से इतनी दूर विदेश में हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अपना योगदान दे रहे हैं ।'हिन्दी चेतना' का प्रकाशन अपने आप में एक उपलब्धी है ।आप सभी साधुवाद के पात्र हैं ।

-राजेन्द्र निशेश (चंडीगढ़ -भारत)

●

पत्रिका आधी से अधिक पढ़ भी ली, कुछ लघुकथाएं ऐसी भी थीं जो लघुकथा के क्षेत्र में चाँद पर कदम के माफ़िक हैं सो पूर्व में भी उनका नज़र से गुज़रना हो ही चुका था.. लेकिन जितना पढ़ा उसके लिए अपने लघु अनुभव से यह बात दावे से कह सकता हूँ कि आज तक हिन्दी साहित्य में जितने भी लघुकथा विशेषांक निकले उनमें सबसे बेहतर में से एक है यह अंक। बहुत ही सुन्दर और योजनाबद्ध तरीके से इस विशेषांक का सम्पादन हुआ है। आदरणीय काम्बोज जी, सुकेश जी, त्रिपाठी जी और सुधा जी को इस सत्प्रयास के लिए बहुत–बहुत बधाई। पत्रिका के एक–एक पृष्ठ पर वैसे ही मेहनत की गई है जैसे कला फिल्म का कोई शानदार फिल्मकार एक–एक शॉट फाइनल करता है, एक कमाल का कहे जाने वाला संगीतकार अपनी धुन बनाता है, कोई विश्वप्रसिद्ध चित्रकार अपनी ख्याति के अनुसार चित्र बनाता है या जैसे कोई पंचसितारा शैफ अपनी प्रेमिका के लिए पहला डिनर तैयार करता है। जितनी खुशी मुझे इस अंक का हिस्सा बनकर हुई उतनी जीवन में बहुत कम बार ही हुई होगी।

-दीपक चौरसिया (यूके)

●

नया अंक देखा। लघुकथाएं पढ़ डालीं। बहुत समृद्ध अंक है खासकर प्रेमचंद, अश्क, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव की रचनाएँ। विशेष लगा विदेशी लघुकथाओं वाला खंड। बधाई ।

-मनमोहन खन्ना सरल (मुंबई, भारत)

●

पहली दृष्टि में प्यार–सी लघुकथा अंक, ने मोह से बाँध लिया, अभी तो दो वाह वाह, शेष वाह पढ़ने के बाद, और एक बड़ी दीर्घ सी आह मेरी कि मैंने लघुकथाएं लिखना क्यों छोड़ दिया, हाय हुसैन हम न क्यों हुए इस अंक में, पूरी टीम का श्रम अपने वेग के साथ साक्षात् हुआ है।

-प्रेम जनमेजय, संपादक- व्यंग्ययात्रा

●

भोर हुई ऑन लाइन 'हिन्दी चेतना' के साथ, तन मन सुरभित हो गया। अब इन पीले पुष्पों की धूप सेंकनी है। बधाई सुन्दर विशेषांक के लिए ।

-शशि पाधा (यूएसए)

●

Namaskar,

I am living in China , first of all I want to tell you I am not able to write hindi font so writing this way , but I will learn soon.

I was feeling alone here , but then I got link of abhivyakti-hindi.org, and did not open hindi link for a long time but when I opened it, and last weak i was so happy to see so many Hindi magazines, when it comes to Hindi Chetna..... excellent !

I read 10 in 1 weak its so well arranged so informative, great job ! I am thankful to you and all the team members of Hindi Chetna.

Truth is that this magazine is in my heart and it has given me chetna.

I used to write poems and stories years ago but did not send for any magazine after reading many articles continuously for a weak I just picked up the pen and started writing the poem.

-Anita Sharma(China)

●

Madam I was truly amazed to see such a nice online magazine. Sitting far away from India, the way you still emphasizing over hindi through your magazine is truly remarkable & quite impressing.

Congratulation for such great success.

-Rita Kashyap(India)

●

नरेन्द्र कोहली विशेषांक के साथ ही मैं 'हिन्दी चेतना' से जुड़ गया था । हिन्दी चेतना का मेरा वर्षों पुराना रिश्ता है। आपने हमेशा व्यक्ति केन्द्रित विशेषांक ही निकाले हैं और इस बार विधा केन्द्रित अंक होने से पत्रिका में आए बदलाव को महसूस किया। विशेषांक संग्रहणीय होने के साथ-साथ कॉफ़ी टेबल पर रखने वाला भी है। क्या ही अच्छा हो हिन्दी चेतना ऐसे संग्रहणीय अंकों की पुस्तकें भी छपवाए। उन पुस्तकों को खरीदने वाला मैं पहला ग्राहक हूँगा । पत्रिका के स्तर को बनाना आसान काम होता है और उसे बनाए रखना बहुत कठिन होता है। पर मैं पूरी तरह से आशावान हूँ कि मुख्य संपादक और संपादक द्वय इसे अगले सोपान पर ले जाएगा। पत्रिका का पुराना पाठक हूँ अत: यह पत्रिका अपनी लगती है और हर अंक के बाद इसे आगे बढ़ते देखा है। सुधा जी आप सह संपादक थीं, संपादक बनते ही आपने इसका नख-शिख बदल दिया इसलिए कुछ सुझाव भी देना चाहता हूँ। विदेशों के हिन्दी रचनाकारों पर समीक्षात्मक लेख छापें जिससे उनका व्यक्तित्व और कृतित्व विश्व के सामने आए। हिन्दी चेतना को उनके लिए बहुत बड़ा प्लेटफार्म बनना चाहिए। मैंने फ़ोन पर आपसे इस विषय में बात की थी,आपने अपनी मजबूरी बताई थी कि आलोचक मिलते नहीं। पर आप नए आलोचक पैदा करें मैं जानता हूँ कि आप यह कर सकती हैं। जो इंसान हिन्दी चेतना के परचम को कैनेडा और अमेरिका की सीमाओं से परे पूरे विश्व में फहरा सकता है, वह विश्व में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य का सही मूल्यांकन नहीं करवा सकता। मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं और नए अंक का इंतज़ार है .....

-डॉ. प्रवीण भाटिया (न्यूयार्क, यूएसए)

●

सादर धन्यवाद । मुझे संबल देने के लिए व सत्य रूप में हिन्दी भाषा की सेवा करने के लिए। हर बार की हिन्दी चेतना का अंक मैं पढ़ती हूँ, अक्तूबर का लघुकथा विशेषांक बहुत ही अच्छा लगा । अपने देश के लेखकों की लिखी लघुकथाओं के साथ ही साथ विदेशी लेखकों की अनूदित रचनाएँ तो बहुत ही उत्तम हैं।

-ममता शर्मा (भारत)

●

प्रेम जनमेजय विशेषांक के बाद सोच रही थी कि हिन्दी चेतना किस और व्यक्ति पर विशेषांक निकालेगी। जब लघुकथा विशेषांक की घोषणा हुई तो सोचा कि दूसरी लघुकथा विशेषांक पत्रिकाओं की तरह बस लघुकथाओं की भरमार होगी। पर नहीं....यह तो कुछ और ही निकला। भरमार के साथ-साथ और भी बहुत कुछ है ....पत्रिका हाथ में आई तो कई बार पन्नों को पलट-पलट कर देखा। कुछ घंटों में पूरी पत्रिका पढ़ गई। आप ने मेरे सुझाव को प्राथमिकता दी, मैंने प्रेम जनमेजय के अंक पर प्रतिक्रिया दी थी कि हर पाठक को साहित्य की हर विधा का ज्ञान नहीं होता। विशेषांक में पाठक को उस विधा से परिचित करवाकर, उसकी रचना प्रक्रिया से भी उसका परिचय करवाएँ।

विशेषांकों का तभी औचित्य है। आप ने लघुकथा विशेषांक में लघुकथा लिखने का शौक रखने वाले और मेरे जैसे लघुकथा में हाथ आज़माने वाले नए लेखकों के लिए लघुकथा के बारे में पूरी जानकारी, उसकी यात्रा, लघुकथा लिखने की रचना प्रक्रिया तक पर रोशनी डाली है। परिचर्चा पाठकों के साथ एक नया संवाद लगी। ऐसा संवाद भविष्य के अंकों में भी होता रहे। विशेषांक में यह प्रयोग अच्छा लगा। रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' और सुकेश साहनी जी को बहुत- बहुत बधाई और आप को आभार, मेरे सुझाव को सम्मान देने के लिए। हिन्दी चेतना का अंदाज़ निराला है।

-सरिता पाठक (वाशिंगटन, यूएसए)

●

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें । अपनी सामग्री यूनीकोड फॉण्ट में टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें । पीडीएफ़ या जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें । रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखना होना ज़रूरी है । आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र भी अवश्य भेजें । पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक के आवरण का चित्र अवश्य भेजें ।

BEST DEALS FLOORING

Residential & Commercial

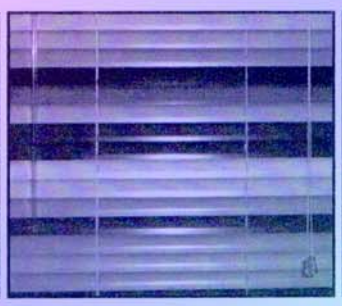

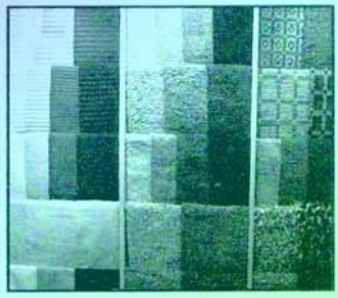

Free Delivery
Under Pad
Installation

Residential
Commercial
Industrial
Motels & Restaurants

Free Shop at
Home Service Call:
416-292-6248

WE ALSO SUPPLY

• Base Boards • Quater Rounds • Mouldings • Custom Stairs • All kinds of Trims • Carpet Binding Available

FREE - Installation - Under Padding - Delivery

Call: RAJ OR GARY 416-292-6248

130 Dynamic Drive, Unit #21, Scarborough, ON M1V 5C9

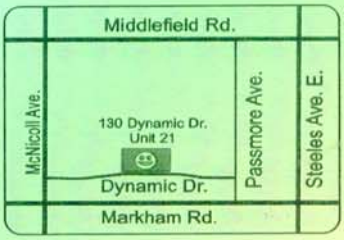

Custom Blinds • Ciramic Tiles • Hall Runner

Direct: 416-953-6233
Office: 905-201-9977

HomeLife/Future Realty Inc., Brockerage
Independently Owned and Operated

Jaswinder Saran
Sales Representative

205-7 Eastvale Dr., Markham, ON L3S 4N8
Highest Standard Agents...Highest Results!...

HOMELIFE HIGHER STANDARDS

REALTOR MLS MULTIPLE LISTING SERVICE

बिना विजन के आप साहित्य नहीं लिख सकते

प्रख्यात कथाकार, आलोचक और हंस के संपादक श्री राजेन्द्र यादव से लालित्य ललित की विशेष बातचीत

डॉ. लालित्य ललित
जन्म: 27 जनवरी 1970
जन्म स्थान: दिल्ली, भारत
प्रमुख कृतियाँ:
गांव का ख़त शहर के नाम, दीवार पर टंगी तस्वीरें, यानी जीना सीख लिया, तलाशते लोग, इंतजार करता घर, चूल्हा उदास है
विविध:
नेशनल बुक ट्रस्ट में संपादक, हिन्दी अकादमी द्वारा श्रेष्ठ कवि पुरस्कार से सम्मानित
संपर्क :
डॉ. लालित्य ललित
बी-343
शकुंतला भवन
पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063
lalitmanora@gmail.com

लालित्य ललित: *क्या 'हंस' की कोई योजना है? आने वाले समय में? प्रवासी साहित्य को अगर स्थान देने की बात करें तो?*

राजेन्द्र यादव: प्रवासी साहित्य पर हमने 'हंस' का विशेषांक भी निकाला था। और आपको ध्यान हो हम जो अपना वार्षिक कार्यक्रम करते हैं। उसमें इस विषय को लेकर बड़ी सार्थक बातचीत का आयोजन किया था।

लालित्य ललित: *आने वाले लेखकों में वे कौन लोग हो सकते हैं जो पढ़े जायेंगे। यह ठीक है कि अभिमन्यु अनंत जो काफी सीनियर हैं; वे अपनी जगह ठीक है। पर नयों में किस में संभावना देखी जा सकती है ?*

राजेन्द्र यादव: मुझे लगता है कि नए लोग वहाँ से कम आ रहे हैं। युवा ऊर्जा वहाँ दूसरी-दूसरी दिशा में जा रहे हैं। हिन्दी में अभी कितने लिखते हैं सही डाटा मुझे मालूम नहीं। और उनमें कितने लिखते हैं या लेखक हैं! कह नहीं सकता। पर यह जो दूसरा डायसपोरा है। पश्चिमी देशों का....इनमें संभावना मुझे ज़्यादा लगती है।

लालित्य ललित : *जो प्रवासी लेखन है उनकी समस्याएँ और चिंताएँ क्या हमारी जैसी हैं?*

राजेन्द्र यादव: हाँ ।

लालित्य ललित: *उनका जो लेखन है क्या वो मन को छूता है ?*

राजेन्द्र यादव: हाँ, वह हमारा ही लेखन है। जैसे मान लो एक आदमी बिहार का रहने वाला है और वह मुम्बई में आ कर किस तरह एडजस्ट करता है। लगभग उसी तरह की स्थिति बाहर भी है। लंदन में जो भी द्वन्द्व, स्थितियाँ या समस्याएँ आपको मिलती हैं वह आपके लेखन का विषय होंगी। उधर वालों ने बहुत लिखा है। पंजाबी बंधु कनाडा में बहुत गए हैं। उन्होंने खूब लिखा है। सरदार लोग; इनमें भी संघर्षशीलता दिखती है। तो मैं यह मानता हूँ कि हमारे यहाँ साहित्य में रोमांटिक एक मापदंड था; छायावादी साहित्य का; सत्यं शिवं सुंदरम का। है ना! 'सत्यं-शिवं-सुंदरं।

मुझे यह लगता है कि किसी ने भी इसका ठीक से विश्लेषण नहीं किया। कहने को तो बड़ी अच्छी बातें हैं। बड़ा सुंदर साहित्य था। लेकिन आज का लेखक पूछता है कि किस का सत्य है! आप का सत्य या मेरा सत्य!

दलित का सत्य या एक संपन्न का सत्य, शिव किस के पीछे है आप तो इलीट वर्ग हैं क्या आपके पीछे या मेरे पीछे! इसी तरह सुंदर की परिभाषा भी अलग-अलग है। संजीव की कहानी थी 'दुनिया की सबसे खूबसूरत - औरत' उसमें एक सुंदर स्त्री का सौंदर्य देखा। सौंदर्य को व्यापक करने की ज़रूरत है क्योंकि हमारे यहाँ सौंदर्य की अवधारणा मुख्य रूप से उत्तर भारत के लिए है। या गोरे रंग की बात करूँ तो! हमारे यहाँ गोरे रंग की लड़की अगर दिख जाए तो कहेंगे अरे! बिल्कुल 'मेम

जैसी है'। मेम माने विदेशी। उस धारणा से दक्षिण की तो कोई स्त्री सुंदर हो ही नहीं सकती। क्योंकि वो सांवली है, काली है। लेकिन लोग कहते हैं कि असली सौंदर्य वही है। लोग सुंदरता को मानते हैं। इसलिए इन धारणाओं को विशेष चश्मे से देखने की आवश्यकता है और अब जो नई धारणा बन रही है। वो है यातना, संघर्ष और जो 'विजन' से जुड़े हैं। कहना यह चाहिए बिना विजन के आप साहित्य नहीं लिख सकते। अपना संघर्ष नहीं व्यक्त कर सकते। विरोध व्यक्तिगत हो, सामाजिक हो या अपने समय का हो। विकासशील देश बिना विजन के आगे कैसे बढ़ेगा? कोई व्यक्तिगत 'एफर्ट है क्या'? अर्थ सेलर (लक्ष्मी निवास मित्तल) या दूसरे लोग आगे बढ़ गए। व्यक्तिगत रूप से कहूँ तो संसार की तीसरी शक्ति बनने जा रहा है भारत। हमारे सामने सबसे बड़ा प्रमाण है।

लालित्य ललित: *मुझे लगता है कि हमारे यहाँ जो या जितने भी पूंजीपति है; जैसे आपने मित्तल का नाम लिया; अंबानी है हमारे सामने। क्या इन लोगों का दायित्व नहीं बनता कि अपनी भाषा को समृद्ध करने का प्रयास करें? या अच्छा साहित्य प्रकाश में लाया जाए ?*

राजेन्द्र यादव: मेरे ख्याल में, इन लोगों की वो बैक ग्राउंड ही नहीं है। इन लोगों में कान्वेंट से आ रहे हैं। और जो है वे शायद इतने समृद्ध ही नहीं है कि अपनी भाषा के लिए कुछ करें। अब जैसे मैं बताऊँ। अशोक वाजपेयी ने 'रजा फाउंडेशन बनाई' बहुत अच्छे कार्यक्रम करने की योजना है । उनके लिए 5-10 करोड़ रुपए एकत्र कर कोई भी ट्रस्ट बना लेने की ज़रा भी दिक्कत नहीं है। वे बना सकते हैं। पूंजीपति अपने व्यापार को चमकाने में तो अथाह पूंजी लगा सकते हैं; लेकिन वे हिन्दी को क्यों देंगे? संगीत की दुनिया देख लीजिए; पैसा कहाँ नहीं है!

लालित्य ललित: *जैसा सरकार ने बजट में अभी केंद्र कर्मचारियों को 20,000 की छूट दी है, उस राशि को 80 जी के तहत साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए नहीं दिया जा सकता है जैसे किसी ट्रस्ट को राशि देकर आयकर से बचा जा सकता है।*

राजेन्द्र यादव: देखिए साहित्यकार, लेखक और कवि थोड़ा गंभीर होता है। यह उसकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है कि वह जाकर किसी विदेशी या

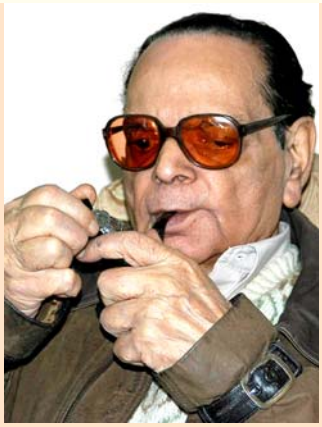

हंस का जो संपादकीय है वह मेरे लिए जान की बला बना हुआ है। जब-तब मैं सोचता हूँ कि संपादकीय से अपने को 'विड्रो कर लूँ'।

पैसे वाले से कहें; यह अलग बात है अगर वह सहयोग स्वेच्छा से करें। यहाँ भी कौन से पैसे वाले हैं जो उदार हैं। डालमिया या जैन जिन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना की हो। ऐसे चार-पाँच ही लोग हैं। दिक्कत यही है कि संपन्न वर्ग से दूर हैं इस तरह के सरोकार। और जो मिडिल कलास में है लेखक लोग इनका उनसे संवाद कैसे हो?

लालित्य ललित: *लेकिन यादव जी, नई पीढ़ी से आपको क्या उम्मीद है ?*

राजेन्द्र यादव: नई पीढ़ी से हमारे यहाँ भी हालत विचित्र है। नए बच्चे हिन्दी कहाँ, अंग्रेज़ी ही जानते हैं। हमारे यहाँ कई ऐसे स्कूल भी है जहाँ हिन्दी बोलना पसंद ही नहीं किया जाता। आपने सुना होगा। अंग्रेज़ी का वर्चस्व है। आप देखेंगे कि कुछ समय बाद अंग्रेज़ी साहित्य में एक से एक धाकड़ साहित्य के लेखक दिखाई देने लगेंगे। हालांकि वे मुझे बहुत गंभीर नहीं लगते। ऐसा बहुत ही महत्त्वपूर्ण साहित्य उन्होंने नहीं रचा। लेकिन बाज़ार पर उनका कब्ज़ा है।

लालित्य ललित: *अगर मैं कहूँ कि विक्रम सेठ कोई किताब लिखता है। या हैरी पार्टर के दीवाने रात से बुक स्टोर्स के बाहर लाइनें लगा लेते हैं। हिन्दी का ऐसा कौन सा लेखक है जिसके लिए पाठक पागल है?*

राजेन्द्र यादव: एक भी नहीं। मुझे लगता है कि यह स्थिति पागलपन की, किसी भी भारतीय भाषा में नहीं है। यह जो हमारा सोचना है कि लिखित साहित्य जो लोकप्रिय है और स्तर को बनाए हुए है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि लिखने वाले कितने हैं? लिखने पर जीविका चलाने वाले कितने हैं? हमारे ज़माने में थे। अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा थे जो विशुद्ध लेखक थे। लेकिन शायद हम लोग भी उसी में शामिल है; जैसे मैंने कोई नौकरी नहीं की। मोहन राकेश थे।

लालित्य ललित: *कभी भी नौकरी नहीं की?*

राजेन्द्र यादव: दो-महीने या चार-महीने।

लालित्य ललित: *सरकारी नौकरी की?*

राजेन्द्र यादव: नहीं, मैंने दो-तीन चीज़ों को तय कर लिया था कि लेखन की स्वतंत्रता के लिए आर्थिक स्रोत जो है उसको पहचानना बड़ा ज़रूरी है। जैसे मैं पुरस्कारों के खिलाफ हूँ। मैंने लिखा भी है पिछले दिनों। अभी एक फैलोशिप मुझे मिल रही थी। उसको मैंने मना कर दिया। सरकारी फैलोशिप थी। तो मैं यह मानता हूँ कि हमें यह देखना होगा कि कितने लेखक है भारतीय भाषाओं में 40 या 50। जो सिर्फ लिखने पर टिके हैं । कोई तो कहीं-कहीं नौकरी करते हैं।

लालित्य ललित: *क्या कभी कुछ ऐसे भी श्रद्धालुजन आपसे मिले हों जिन्होंने गुप्तदान से 'हंस' की सेवा करने की पहल की हो?*

राजेन्द्र यादव: नहीं ऐसा तो कुछ याद नहीं पड़ता। हाँ किसी संस्था ने अगर मदद की तो वह पच्चीस-बीस हज़ार रूपए से ज़्यादा की नहीं की। केवल मदद की थी हमारी प्रभा खेतान ने।

लालित्य ललित: *हाँ, आपने काफी पहले अपने संपादकीय में लिखा था। यादव जी कितना समय आप लिखने-पढ़ने को देते हैं।*

राजेन्द्र यादव: सुबह जब पाँच बजे उठता हूँ । पहले चार बजे उठ जाता था। तीन घंटे अपने को देता हूँ । उसके बाद मैं 12 बजे के लगभग यहाँ (हंस कार्यालय) आ जाता हूँ । और मैंने मित्रों से कह रखा है कि मैं ढाई बजे के बाद 'फ्री' होता हूँ । उस दौरान रचना देखना, डाक देखना या रचनाओं की छँटाई करना शामिल होता है।

लालित्य ललित: *एक महीने में आप कितनी कहानियाँ पढ़ लेते हैं ?*

राजेन्द्र यादव: आठ-दस रचनाएँ रोज़ आती हैं। उसमें कहानियाँ भी होती हैं, कविताएँ भी होती हैं। महीने में चार-पाँच सौ कहानियाँ तो आ ही

जाती हैं। फिर उन्हें पढ़ना पड़ता है। क्योंकि मेरी आँखों में समस्या है। डायबेटिक हूँ। इसलिए यहाँ से जाने के बाद अगर खाली हूँ तो पढ़ता रहता हूँ ।

लालित्य ललित: *डायबिटीज़ की आपने बात कही। तो एक शीशी में काली मिर्च और काला नमक पचास प्रतिशत के अनुपात में मिला लें। 'शूगर' नार्मल हो जाएगी। चाय पीने से पहले एक चम्मच मिला लें तो 'शूगर' कंट्रोल हो जायेगी।*

राजेन्द्र यादव: काली मिर्च और काला नमक; उसे चाय में डाल लें। अब पच्चीस साल हो जायेंगे 'हंस' निकालते। मुझे संतोष इस बात का है कि व्यक्तिगत प्रयास से 'हंस' को खड़ा किया। आज सामूहिक प्रयास से 'हंस' चल रहा है। कोई चंदा दिलाता है, कोई बनवाता है। इस तरह मित्रों के सहयोग से 'हंस' चल रहा है।

लालित्य ललित: *कहना चाहिए कि 'हंस' सबकी या कहें कि अपनी पत्रिका है।*

राजेन्द्र यादव: लगभग, एक बात जो ग़लत हो रही है पिछले 20-25 साल से उसका जो संपादकीय है वह मेरे लिए जान की बला बना हुआ है। जब-जब मैं सोचता हूँ कि संपादकीय से अपने को 'विड्रो कर लूं'। रचनाएँ देख लूँ बस। लेकिन तब-तब धमकी आती है जैसे होता है। याद आ रही है एक घटना, श्रीराम सेंटर में एक थीं मिसेज़ आचार्या।

लालित्य ललित: *बहुत पहले की बात है...*

राजेन्द्र यादव: हाँ, बहुत पहले की बात है। पाँच साल होने को आए। मिसेज़ आचार्या किसी संपन्न घर की महिला थी। उनके बच्चे बाहर सेटल हो गए थे। तो उसने सोचा कि अब आगे क्या करें? तो उन्होंने त्रिवेणी में कैंटीन चलाई । और वहाँ से श्रीराम सेंटर में किताबों का कार्नर शुरू कर लिया। उनका पढ़ने का शौक था। जब मैं उनसे मिलता था, कभी तो 'हंस' के संपादकीय की बड़ी तारीफ करती थीं। एक बार तो उन्होंने कहा कि हमारी 100 कापियाँ कर दो। रंगकर्मी, पाठक कई तरह के लोग जुटते थे वहाँ पर। हमने कहा कि यह संपादकीय लिखना हमारी जान पर रोग हो गया है। इससे हम मुक्त होना चाहते हैं। मैं सोचता हूँ कि अब संपादकीय लिखना बंद कर दूँ। उन्होंने कहा तकलीफ है तो बंद कर दो; बहुत अच्छी बात है लेकिन उसके बाद मेरी शॉप में 'हंस' ना भेजना; इसे भी बंद कर दो।

लालित्य ललित: *क्या बात है? यह हुई ना बात! यहीं तो आपका जादू है।*

राजेन्द्र यादव: (हँसते हुए) मेरा ख्याल है कि आठ-दस हज़ार लोग ऐसे हैं जो सिर्फ संपादकीय ही पढ़ते हैं।

लालित्य ललित: *बड़ी बात है...*

राजेन्द्र यादव: मैं लिखूँ या बंद करूँ तो लगभग आत्महत्या होगी। उसके चक्कर में मुझे लिखना पड़ता है।

लालित्य ललित: *ज़रूरी है; जैसे आपने अपने संपादकीय की बात की। प्रभात जोशी, अनिल नरेंद्र के संपादकीय भी पहले पढ़ने की ललक शुरू से पाठक के मन में रही है।*

राजेन्द्र यादव: यह पाठकों का स्नेह है जो निरंतर हमें मिल रहा है। यही शक्ति है जो हमें लिखने को प्रेरित करती है।

कहानी

विकेश निझावन

गाँठ

मेरी छाती के बीचों बीच एक गाँठ उभर आई है। पहले छोटी थी, अब बड़ी हो गई है। ज़्यादा बढ़ जाने का कारण शायद मेरी लापरवाही ही है। शुरू में ही डाक्टर को दिखला लिया होता, तो आज यह नौबत न आती। हाँ, मैंने बुआ से अवश्य ज़िक्र किया था इसका; लेकिन मेरी बात को बुआ हवा में उड़ाती बोली थी, 'अरे, इन तन की गाँठों से कुछ नहीं होता, मन में कोई गाँठ नहीं पड़नी चाहिए।' बुआ की बात का आशय मैं समझ नहीं पाया था। इस बात को मैंने गम्भीरता से लिया भी नहीं था।

गाँठ मुझे किसी तरह की तकलीफ़ भी नहीं दे रही थी, सो मैं निश्चिन्त हो आया था। पत्नी को भी नहीं बताया। उस रोज़ एक दैनिक में छपे एक लेख पर नज़र पड़ी, तो मैं काँप-सा गया। उसमें लिखा था कि शरीर पर उभर आई गाँठें कभी-कभी कैंसर का रूप भी ले लेती हैं। मैं झट से उठा और आदमकद आईने के आगे खड़ा हो गया था। मैंने कमीज़ और बनियान उतारी। बड़े गौर से मैंने उस गाँठ को देखा। वह पहले से कुछ बड़ी लग रही थी। मैंने उसको छुआ और धीरे-धीरे सहलाने लगा। गाँठ बिल्कुल नरम थी। उसमें किसी तरह की लाली या दर्द नहीं था। जब यह मुझे तकलीफ़ नहीं दे रही तो मुझे निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

सॉयन्टालोजी का लैक्चर देते हुए डाक्टर जॉन कह रहे थे, हमारे जीवन में हुए कुछ हादसे हमारे भीतर लॉक्स लगा देते हैं। कई बार वे लॉक्स शरीर में गाँठें बन कर उभर आते हैं।और कभी तो वे किसी भयंकर बीमारी का रूप ले लेते हैं। एकाएक मेरा पूरा शरीर सिहर उठा। मैं अपनी बीती हुई ज़िंदगी याद करके देखूँ। कहीं मेरी यह गाँठ भी उन्हीं हादसों। लेकिन मैं भला क्या याद करूँ। मेरा अतीत तो मेरे सामने बिछा पड़ा है। यों कह लूँ कि मैं चल आगे को रहा हूँ, मेरा अतीत मेरा पीछा करता हुआ मेरे साथ-साथ चल रहा है।

विवाह के बाद दीदी ने इस घर में जब पहला फेरा लगाया था, तो माँ से लिपट कर खूब रोयी थी। माँ को तो सच में गुस्सा आ गया था, 'अरी ऐसा भी क्या रोना! क्या दूसरी लड़कियों का ब्याह नहीं होता। हम भी तो ब्याह कर पराए घर में आई थीं, और फिर सारी ज़िन्दगी क्या माँ -बाप के सहारे कटती है?'

माँ ने तो अच्छा-खासा भाषण झाड़ दिया था। पास खड़े बाऊजी एकाएक बोले थे, 'रोने का कारण तो पूछा होता?'

इस बात का ध्यान तो माँ को जैसे आया ही नहीं था। हाथ नचाती बोली थीं, 'खाक पूछूँ भला। पास खड़े रहोगे तो वह कुछ बताएगी क्या?'

बाऊजी बाहर को निकल गए थे। दीदी ने मेरे सामने माँ को कुछ नहीं बताया था लेकिन एक मुर्दनी छा गई थी माँ के चेहरे पर। धीरे-धीरे वह मुर्दनी बाऊजी के चेहरे पर फैलती चली गई। फिर इस घर के हर कोने में।

उस रात छत पर सो रहे हम लोग। दीदी नीचे कमरे में ही थी। नींद आँखों में उतर ही नहीं रही थी। बाऊजी माँ से कह रहे थे, 'कुछ बताया उसने?'

'नहीं!' माँ की आवाज़ जैसे किसी क़ब्र के नीचे से फूटी हो। दबी-सी, सहमी-सी।

'कैसे पता चलेगा?'

विकेश निझावन

पत्र-पत्रिकाओं धर्मयुग, सासाहिक हिन्दुस्तान, सारिका, हंस, कहानी, वागर्थ, कथादेश, वर्तमान साहित्य, नई कहानियाँ, कहानीकार, सरिता, मुक्ता, नवभारत टाइम्स, कथाक्रम, कथानक, कथाबिम्ब, हरिगंधा, दैनिक ट्रिब्यून, दैनिक हिन्दुस्तान, जनसत्ता, दैनिक भास्कर में कहानियाँ, एवं कविताएँ प्रकाशित। अनुवाद: अंग्रेज़ी, गुजराती, मलयालम, उर्दू, तेलगु, पंजाबी आदि में अनेक कहानियाँ, अनूदित ।

कहानी संग्रह-हर छत का अपना दु:ख, अब दिन नहीं निकलेगा, महादान,आखिरी पड़ाव, गठरी, मेरी चुनिंदा कहानियाँ, कोई एक कोना, कथापर्व, महासागर, मातृछाया(प्रकाशनाधीन) उपन्यास-मुखतारनामा, कोकून (प्रकाशनाधीन) लघुकथा संग्रह-दुपट्टा, कितनी आवाज़ें

कविता संग्रह- मेरी कोख का पाण्डव, एक खामोश विद्रोह, एक टुकड़ा आकाश, शेष को मत देखो, प्यारा बचपन 'दो भाग' (बाल कविताएँ) ,बचपन के गीत 'दो भाग' (बाल कविताएँ)

निबन्ध-20 पर्यावरण हमारा दोस्त (निबन्ध), अनेक कहानी संकलनों में कहानियाँ एवं कविताएँ संकलित। 'पेंगुइन' द्वारा प्रकाशित संकलन 'गदर के 150 साल' में आलेख संकलित।

साहित्यिक पत्रिका 'शुभ तारिका' एवं 'रूपा की चिट्ठी' का सम्पादन। 'दीपशिखा' पत्रिका के 'लोककथा' अंक का सम्पादन। पिछले तीन वर्षों से 'पुष्पगंधा' साहित्यिक पत्रिका के संपादक । कहानियाँ 'एक टुकड़ा ज़िंदगी', ऊदबिलाव', एवं 'न चाहते हुए' का दूरदर्शन एवं ज़ी चैनल पर नाट्य-रूपान्तर।

संपर्क
557 बी, सिविल लाईन्स
आई. टी. आई बस स्टॉप के सामने
अम्बाला शहर-134003- हरियाणा
दूरभाष - 9896100557
ईमेल
vikeshnijhawan@rediffmail.com

'कल पूछूँगी।'और मैं कल का इंतज़ार करने लगा था। मन तो हुआ था, खुद ही पूछ लूँ दीदी से जाकर। मुझे तो बता ही देगी। लेकिन दीदी के सामने पड़ते ही मेरे होंठ सिल गए। मेरी जिह्वा कहीं मुँह के अन्दर ही चिपक गई। दीदी की आँखों में कुछ उग आया था। न जाने क्या था वह। दीदी घर भर में इधर-उधर घूमती, उठती-बैठती, खाती-पीती, और मैं तिरछी नज़रों से दीदी की आँखों में उस उगे हुए को पहचानने की कोशिश करने लगता। दूसरी रात उतर आई थी। बाऊजी का फिर वही सवाल, जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी, उठा था, 'कुछ पूछा तूने?'

'हाँ !'

'क्या कहती है?'

'कहती है, उसके आदमी को रोग है।'

'कैसा रोग?'

'यह नहीं बताया?'

फिर वही सन्नाटा, गहरा सन्नाटा! अगली सुबह दीदी लौट गई। उसके जाते ही रातवाला सन्नाटा दिन में भी उतर आया। पूरे घर-भर में। जाने कितने दिन वह सन्नाटा उसी तरह बना रहा। कुछ बढ़ता ही चला गया। बाऊजी दफतर से रात देर तक लौटते। माँ देर से आने का कारण पूछती, तो बाऊजी चिल्लाकर कहते, 'प्राईवेट नौकरी है, सौ काम पड़ सकते हैं।'

'मैंने तो पूछा है, इसमें चिल्लाने की क्या बात है।'

बाऊजी के लौटने का समय बढ़ता चला गया। पहले नौ बजे तक आते थे, फिर दस बजे तक आने लगे और फिर ग्यारह बजे तक। आज तो माँ शायद सच में फट पड़तीं, अगर शाम को दीदी न आ गई होती।'

'यह अचानक ?' माँ के शब्द कहीं आधे में ही रह गए। दीदी कुछ नहीं बोली। चुपचाप भीतर को चली गई। कमरे में बन्द हो गई। रात बाऊजी के आने पर ही बाहर निकली।

'कितने दिन के लिए आई हो?' बड़े सहज भाव से बाऊजी ने पूछा था।

'कल सुबह जाना होगा।'

'कल सुबह!' बाऊजी चौंके थे, 'इतनी जल्दी?'

'हाँ !'

'फिर आई ही क्यों?' बाऊजी का स्वर ज़रा

गुस्से-भरा था।

'साँस लेने आई थी।'

सब कुछ रुक गया था। हवा का चलना, साँसों की गति, पृथ्वी का घूमना। ऐसे में दीदी यहाँ भी कैसे साँस ले पाएगी।

सुबह सवेरे ही दीदी लौट गई थी। उसके जाते ही बाऊजी माँ से उलझ पड़े, 'माँ हो उसकी। पूछ नहीं सकती थी,इतनी थोड़ी देर के लिए क्यों आई?'

'पूछा था।'

'क्या कहा?'

'बताने आई थी।'

'क्या?'

'उसके आदमी का रोग बढ़ गया है।'

'कैसा रोग, यह नहीं बताया?'

'नहीं।'

'वो कह रही थी कि यहाँ साँस लेने आई है, वहाँ साँस नहीं ले सकती क्या?'

'नहीं! वहाँ दम घुटता है उसका।'

'फिर यहीं रह जाए।'

'कैसे रह जाए उसको छोड़ कर। उसका रोग बढ़ सकता है।'

'इसका दम घुट गया तो?'

'कहती थी, कभी-कभी साँस लेने के लिए आ जाया करूँगी।'

'इलाज करवा रही है उसका?'

'कहती थी, लाइलाज बीमारी है।' माँ के शब्दों में कम्पन था। मेरे जिस्म में भी कम्पन हुआ। बाऊजी भी काँपे होंगे। दीदी कभी भी आ सकती है। किसी भी वक्त । साँस लेने के लिए।

माँ सारा-सारा दिन रोती रहती। बाऊजी को गुस्सा आने लगता, 'तेरे रोने से उसका दु:ख खत्म हो जाएगा क्या?'

'मैं तो हल्की हो जाऊँगी।'

'तेरे रोने का असर किसी और पर नहीं हो सकता क्या?'

'किस पर?' माँ की आँखें अनायास ही मेरे चेहरे की ओर उठी थीं, फिर पूरी तरह से ज़मीन में गड़ गयीं।

अब मैं, माँ और बाऊजी के बीच में से हटने लगा था। अब मैं बीच की दीवार नहीं, पीछे की दीवार बन गया। छिप-छिपकर, कभी दरवाजे की ओट से, और कभी खिड़की की ओट से उनकी बातें सुना करता। बीच में दीदी की एक चिट्ठी भी आई थी, माँ के नाम।

'अब तो वह मरने वाला होगा?' बाऊजी कह रहे थे।

'नहीं, वह नहीं मर सकता।'

'तुम्ही तो कह रही थी, उसका रोग बढ़ गया है।'

'उस रोग से कोई नहीं मर सकता, उसने लिखा है।'

'अगर उससे कोई मर नहीं सकता, फिर चिन्ता किस बात की?'

'उससे कोई दूसरा मर सकता है।'

'कोई दूसरा!' बाऊजी का स्वर पूरी तरह से अँधेरे में डूब गया। सच में कितनी अजीब बात है। ऐसा कौन-सा रोग हो सकता है, जिससे व्यक्ति स्वयं नहीं मरता, कोई दूसरा मर जाता है। मैंने तो न कभी सुना, न कभी पढ़ा। अब के दीदी आए न, पूछ ही डालूँगा।

दीदी आ गई थी। उसी रात। घुप्प अँधेरे में। उसकी कलाइयों से खून बह रहा था।

'ये क्या है?' माँ चौंकती हुई बोली थी।

'काँच की चूड़ी पहनी थी न, लग गई।'

'तेरे कानों में भी खून!'

'आज ही कान बिंधवाए थे।'

'तेरे नाक में भी?'

'आज मैंने चाँदी की बहुत भारी नथनी पहनी थी।'

'झूठ बोलती है तू!' बाऊजी एकाएक चिल्ला पड़े, 'तेरी माँग में भी खून भरा पड़ा है।'

'मैंने ही लगाया है।'

'किसलिए?'

'खून मुझे अच्छा लगने लगा है।'

'क्यों?'

'यह सब मैं बताऊँगी अब।' दीदी ठहाका मार कर हँस पड़ी।

'कोई बात खुलकर क्यों नहीं कहती तू?'

'इनका रोग बढ़ जाएगा।'

'कैसा रोग?' इस बार बाऊजी ने दीदी के दोनों कन्धों को कसकर पकड़ लिया था, 'बोल दे तू। बोल दे नहीं तो।'

बाऊजी का स्वर इस बार दीदी को पूरी तरह से डरा गया।

'इन्हें सन्देह है मुझ पर।' दीदी का काँपता स्वर था।

'कैसा सन्देह?'

'मेरे साँस अन्दर खींचने से बाहर छोड़ने तक।'

बाऊजी की जुबान को जैसे ताला लग गया। काफी देर बाद बोले थे, 'ऐसा क्यों है?'

'यह रोग इन्हें विरासत में मिला है, ये कहते हैं।'

'उफ्फ!'

मेरी छाती में दर्द होने लगा है। दर्द बढ़ता जा रहा है। अरे, वह गाँठ बहुत भारी-सी लगने लगी है। मुझे जल्दी ही किसी डॉक्टर को दिखाना चाहिए। डॉक्टर चोपड़ा को। वे अच्छे सर्जन हैं ।

डॉक्टर चोपड़ा ने गाँठ को दबाया, तो उसमें से एक तेज़ टीस उठी।

'कब से है यह?'

'है तो काफी दिनों से, दर्द आज ही उठा है।'

'इसका ऑपरेशन करना पड़ेगा।'

'ऑपरेशन!' ऑपरेशन थियेटर की मेज़ पर पड़ी दीदी की लाश अब मेरी लाश में बदलेगी। दीदी ने तो ज़हर खाया था, मेरे जिस्म में ज़हर अपने-आप पैदा हो आया है।

'आप कल सुबह आ जाइयेगा। आपका ऑपरेशन जल्द हो जाना चाहिए, नहीं तो।'

मैं लौट आया था, दबे पाँव, रेंगता हुआ।

पत्नी दरवाज़े पर खड़ी है। मेरी ही प्रतीक्षा में होगी।

'एक बात पूछूँ जी?' मेरे करीब पहुँचते ही उसने दबी-कटी जुबान से सवाल किया है।

'कहो तो!' मैं जानता हूँ , वह कुछ भी पूछ सकती है। उसे भी तो वही रोग है, जीजा जी वाला।

'मुझे आज ही पता चला है कि तुम्हारी बहन ने ज़हर खा लिया था।'

मैं खामोश हूँ। केवल देख ही पाता हूँ उसके चेहरे की ओर- पल-भर के लिए।

'कहीं कोई चक्कर-वक्कर तो नहीं था उसका?'

मैं अब भी चुप हूँ। बिना कुछ कहे भीतर को आ गया हूँ। वह भी मेरे पीछे-पीछे आती हुई बोली है, 'कहीं तुम भी तो किसी के चक्कर में नहीं, जो इतनी-इतनी देर तक घर से गायब रहते हो।'

'मैं तुम्हारे किसी भी सवाल का जवाब देने के मूड में नहीं हूँ।'

'तुम्हारे पास कोई जवाब है भी जो तुम दोगे।' तीखी व्यंग्यात्मक हँसी हँसती हुई वह बाहर को निकल गई है।

रात आँख लगी, तो अजीब-से सपने में घिर आया। घर के आँगन में मेरी लाश पड़ी है और पत्नी लोगों से कह रही है, 'हाँ , किसी के चक्कर में थे, उसी ने मरवा दिया होगा !'

सुबह जल्दी ही उठकर तैयार हो गया। पत्नी खामोश है; लेकिन उसकी आँखें मेरे जिस्म पर लगी हैं। कभी मेरे चेहरे पर उठती हैं, कभी मेरी पीठ पीछे चिपक जाती हैं और कभी मेरे जिस्म को छेदती हुई भीतर कुछ टटोलने लगती हैं; लेकिन क्या उसे मेरी छाती पर उभर आई गाँठ नज़र नहीं आती?

'कहाँ जा रहे हैं आप?'

'मेरा ऑपरेशन होना है।'

वह कुछ भी नहीं बोली, बस मुस्कराए चली जा रही है। कमाल है, उसने कुछ भी नहीं पूछा कि कैसा ऑपरेशन!

मैं रेंगता हुआ डॉक्टर चोपड़ा के नर्सिंग होम में ऑपरेशन थियेटर की मेज़ पर जा लेटा हूँ। डाक्टर चोपड़ा ने एक बोतल खोलकर मेरी नाक के आगे रख दी है। कुछ भुतहा चेहरे मेरे आसपास मँडराने लगे हैं।

धीरे-धीरे मेरी आँखें खुलने लगी हैं। डाक्टर चोपड़ा कह रहे हैं, 'अब तुम जा सकते हो। तुम्हारा ऑपरेशन ठीक हो गया है।'

अब पुनः रेंगता हुआ मैं घर पहुँचा हूँ। मैं खुश हूँ। चलो अच्छा है गाँठ निकल गई, नहीं तो जाने कैसा रूप ले लेती। घर पहुँचकर मैं एक बार आईने में अपने कामयाब ऑपरेशन को देखकर तसल्ली कर लेना चाहता हूँ।

मैंने पहले कमीज़ उतारी है, फिर बनियान। एकाएक आईने में से पीछे खड़ी पत्नी का चेहरा उभरता है। उसके होंठों पर सुबह वाली व्यंग्यात्मक हँसी है। उसकी आँखों में कोई दबा हुआ सवाल है। अरे यह क्या! गाँठ पहले से दूनी हो आई है। क्या पत्नी मेरी छाती पर उभर आई इस गाँठ को देख पा रही है?

Shil K. Sanwalka, Q.C.

Barrister, Solicitor & Notary

18 WYNFORD DRIVE,
SUITE #602,
DON MILLS, ONT. M3C 3S2

Telephone: (416) 449-7755
Fax: (416) 449-6969

sksanwalka@rogers.com

कहानी

रीता कश्यप

सौदागर

रीता कश्यप

जन्म –नई दिल्ली

शिक्षा –बी.ए. आर्नस, दिल्ली विश्वविद्यालय, एम.ए.संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय।

आकाशवाणी में 30 वर्षों तक कार्यरत।

सृजन–जड़ों की तलाश में, विवश (कहानी संग्रह), मेरी तौबा (हास्य व्यंग्य संग्रह),नियति(उपन्यास)। कहानियाँ, लघुकथाएँ, व्यंग्य लेख आदि प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित । प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री कल्पना चावला को समर्पित पुस्तक नव सदी नारी चेतना के स्वर में देश की 300 चुनिंदा महिला रचनाकारों में स्थान, बीसवीं सदी की महिला कथाकारों की कहानियाँ शीर्षक से 10 खंडों में प्रकाशित पूरी एक सदी की प्रमुख 260 महिला कथाकारों में स्थान, सीमाएँ देश बाँटती हैं दिलों को नहीं इस विषय पर लिखी कहानी जड़ों की तलाश में का उर्दू अनुवाद उर्दू की मशहूर पत्रिका बीसवीं सदी में प्रकाशित।

संपर्क

बी–302, सागर–सदन,113 आई.पी. ऍक्सटेंशन (पड़पड़गंज), दिल्ली–92

ईमेल–ritakashyap@gmail.com

दूरभाष– +91–9958622992

लगभग दस महीने हो गये हैं उस घटना को लेकिन अभी तक मेरा जीवन सामान्य नहीं हो पाया है। मुझे रात–रात भर नींद नहीं आती। दिनभर अजीब–सी बेचैनी, उदासी छटपटाहट मुझे घेरे रहती है। ऐसे लगता है जैसे मेरे शरीर से खून ही नहीं प्राण भी कोई निकाल ले गया है। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं साँसें तो यहाँ लेती हूँ लेकिन मेरा दिल यहाँ से हज़ारों मील दूर धड़क रहा है। वह नन्ही जान हज़ारों मील दूर जब भूख से छटपटाती है तो दूध यहाँ मेरी छाती में उतर आता है।कोई नहीं समझता मेरे इस दर्द को। यह दर्द मुझे किसी करवट चैन नहीं लेने देता। यह कैसा परोपकार था जिससे मेरी सुखी गृहस्थी में ग़मों की छाया पसर गई है। दूसरों के जीवन में बहार लाने की कोशिश में हमारे जीवन में पतझड़ आ गया है।

एक औरत जब माँ बनती हैं तो उसके और उसके परिवार के जीवन में कितनी खुशियाँ आती हैं। एक जीता–जागता खिलौना सब के हाथों में आता है। मन आनन्दित होता हुआ उसके भविष्य के सुखद सपने बुनने लगता है लेकिन हमारे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। हमारे तो परिवार की वह पहले वाली हँसी, वह ख़ुशी, वह सुकून सब जैसे कहीं खो गया हैं।

यह तो होना ही था। इसीलिए तो मैं इस सब के लिए तैयार ही नहीं हो रही थी लेकिन विनोद के आगे मेरी एक न चली। उसके आगे मैं हमेशा ही समर्पण कर देती हूँ । कभी उसके प्यार के कारण कभी घर की खुशी के कारण तो कभी अपने संस्कारों के कारण।

हमारी हँसती खेलती गृहस्थी थी। हमने अपने इकलौते बेटे सारांश को इसी साल शहर के सबसे बड़े स्कूल में दाखिल करवाया है। उम्र के इस मोड़ पर भविष्य की चिन्ताओं से बेख़बर हम अपनी जीवन नैया को हवाओं पर छोड़ कर बढ़े जा रहे थे कि एक दिन रंजन, विनोद के बचपन का दोस्त जो अमेरिका में जा बसा था मिलने आ गया।

विनोद और रंजन स्कूल तक साथ–साथ पढ़े हैं और अच्छे दोस्त हैं। रंजन स्कूल की पढ़ाई पूरी कर अमेरिका की ओहाओ स्टेट यूनिवर्सिटी में पढ़ने चला गया। विनोद भले ही यहाँ रह कर पढ़ रहा था लेकिन दोनों दोस्त निरन्तर सम्पर्क में थे। आजकल सस्ती टेलीफोन दरें और सुलभ इंटरनेट आदि सुविधाओं ने यह सब सुलभ बना दिया है। आजकल पूरी दुनिया एक गाँव ही तो होकर रह गई है।

महत्त्वाकांक्षी रंजन राह में आने वाली हर बाधा को हटाता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था। पढ़ाई के लिए अमेरिका गया रंजन देश लौटना ही नहीं चाहता था। अचानक अमेरिका पर आई आतंकी आपदा के बाद उसका यह सपना जब चकनाचूर होता दिखाई दिया तो उसने अपने साथ पढ़ने वाली एक अमेरिकन लड़की जूलिया से शादी कर ली।

पढ़ाई पूरी होते ही दोनों की अच्छी कम्पनी में नौकरी भी लग गई। रंजन ने जैसा चाहा था जीवन ठीक वैसा ही चल रहा था। उनकी शादी को सात साल हो गए थे। रंजन को धीरे–धीरे जीवन से बोरियत होने लगी थी। एक सी दिनचर्या। घड़ी का अलार्म बजते ही उठ बैठो झटपट तैयार होकर घड़ी की सूइयों के साथ दौड़ते हुए आफिस पहुँच जाओ। दिनभर काम करो। रात को घर आओ तो कॉफी के साथ कभी ब्रेड, कभी बर्गर, कभी पिज़्ज़ा । बस हो गया डिनर। सुबह जल्दी उठने की टेंशन के साथ थोड़ी देर टीवी देखो और सो जाओ। कभी पति–पत्नी के काम का समय अलग–अलग होता तो कभी शहर ही अलग–अलग होता। कभी कभी तो महीने में मुश्किल से तीन चार दिनों के लिए ही दोनों साथ होते।

दिल्ली में जन्मे–पले रंजन ने वहाँ की जलवायु से समझौता कर लिया है। वहाँ की भाषा और रहन–सहन से भी समझौता कर लिया है। नाश्ते में परांठों और आलूपूरी को भूल कर ब्रेड–बटर सेंडविच, आमलेट से समझौता कर लिया है। दाल, रोटी, सब्जी छप्पन भोग भूल कर ब्रेड, बर्गर, केक, पिज़्ज़ा से भी समझौता कर लिया। उसने अपनी महत्त्वाकांक्षा की सूली पर अपनों का प्यार, अपनों के अरमान भी चढ़ा दिए। शादी करके वहाँ की संस्कृति, वहाँ के खुलेपन से भी समझौता कर लिया लेकिन एक बात पर वह अपनी पत्नी से समझौता नहीं कर पा रहा था।

व्यक्ति स्थान और स्थिति के अनुसार अपने को कितना ही क्यों न बदल ले, फिर भी उसकी संस्कृति, उसके संस्कार कभी तो उबाल मारते ही हैं। शादी को सात साल हो गए हैं, वह घर में एक बच्चा चाहता है, लेकिन जूलिया माँ बनने को तैयार नहीं। इन सात वर्षों में वह तीन नौकरियाँ बदल

चुकी है। अपने उन्नत भविष्य की ओर पग-पग बढ़ती वह माँ बनकर अपने कैरियर में कोई रुकावट नहीं आने देना चाहती।

वह तो इस शादी के लिए भी तैयार नहीं थी। उसे तो लिव इन रिलेशनशिप में रहने में भी कोई एतराज़ नहीं था लेकिन शादी रंजन के कैरियर के लिए ज़रूरी थी। यह समझौता जूलिया ने रंजन के लिए किया था। अब माँ न बनना जूलिया के कैरियर के लिए ज़रूरी है, इसलिए अब समझौता करने की बारी रंजन की थी।

लेकिन रंजन यह समझौता नहीं कर पा रहा था। इसलिए परेशान रंजन कुछ दिनों के लिए छुट्टियाँ बिताने भारत अपने परिवार के पास आया था। लेकिन यहाँ आकर वह और भी ज़्यादा बेचैन हो गया था। वह जहाँ भी जाता, अपने बढ़े भाई के घर, बहन के घर या हमारे घर, हर कहीं बच्चे चाचा-चाचा, मामा-मामा तो कहीं अंकल-अंकल कह कर उसके आगे-पीछे घूम रहे थे। ऐसे में उसके दिल में अपने बच्चे की चाहत और बलवती होने लगी थी।

दिल के किसी कोने में रंजन को रह-रह कर जूलिया का दिया ताना भी टीस दे रहा था। तुम इंडियंस कितने भी पढ़ लिख जाओ लेकिन रहोगे वही दकियानूसी, इंडिया जा रहे हो तो अपने लिए एक बच्चा भी लेते आना, मैं इस पचड़े में पड़ने वाली नहीं।

रंजन अपने दिल का दर्द विनोद से न छिपा सका। चाह हो तो राह भी निकल ही आती है। अचानक एक दिन सुबह अख़बार पढ़ते हुए रंजन की नज़र एक ख़बर पर पड़ी। लिखा था, आजकल कई विकसित देशों में रहने वाले माता-पिता किन्हीं विशेष कारणों के चलते अपनी संतान के लिए भारत का रुख कर रहे हैं। भारत में सरोगेट मदर आसानी से मिल जाती हैं।

जब विदेशी दम्पती भारत आकर अपना नामलेवा ले जाते हैं तो रंजन के तो संस्कार और संस्कृति की जड़ें ही भारत में हैं। वह क्यों नहीं? इस ख़बर ने रंजन के लिए खुशियों के दरवाज़े खोल दिये थे।

एक रात बड़े ही व्यक्तिगत क्षणों में विनोद ने मेरे सामने एक बार फिर से माँ बनने का प्रस्ताव रखा। मैं सुनकर परेशान तो नहीं हाँ थोड़ी हैरान

उसे तो लिव इन रिलेशनशिप में रहने में भी कोई एतराज़ नहीं था लेकिन शादी रंजन के कैरियर के लिए ज़रूरी थी। यह समझौता जूलिया ने रंजन के लिए किया था। अब माँ न बनना जूलिया के कैरियर के लिए ज़रूरी है, इसलिए अब समझौता करने की बारी रंजन की थी।

ज़रूर हो गई क्योंकि आज के महँगाई और प्रतिस्पर्धा के दौर में एक संतान का ही ठीक से लालन-पालन कठिन है । इसलिए तो हमने अपना परिवार सारांश तक ही सीमित रखने का विचार वर्षों पहले ही बना लिया था। अब अचानक एक और बच्चे की परवरिश का बोझ क्या हम उठा पाएँगे?

वास्तविकता जानते ही जैसे मेरे पाँव के नीचे से ज़मीन ही खिसक गई। विनोद का कहना था कि यह दूसरा बच्चा हमारा नहीं रंजन का होगा। रंजन अपनी औलाद के लिए भारत में एक सरोगेट मदर यानी किराये की कोख की तलाश में है। यह कोख अगर जानी-पहचानी हो तो कितना अच्छा होगा? हम दोस्त के काम आ सकेंगे और रंजन को एक संस्कारी बच्चा मिल सकेगा क्योंकि बच्चे में पिता के अंश के साथ-साथ माँ का अंश भी तो होता है। ऐसे में मुझ जैसी पढ़ी-लिखी, सुन्दर, सुघड़, संस्कारी माँ का अंश यदि बच्चे में होगा तो कितना अच्छा होगा?

उस दिन विनोद के मुँह से अपनी तारीफ सुनकर मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगा था। उस रात अपनी पूरी कोशिशों के बाद भी मैं विनोद को अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं कर पायी थी। मैं विनोद को नहीं समझा पायी की एक औरत जब माँ बनती है तो उस बच्चे से शारीरिक रूप से ही नहीं भावनात्मक रूप से भी जुड़ती है। कैसे कोई माँ अपने बच्चे को अपने से दूर किसी दूसरे को दे सकती है? लेकिन विनोद का कहना था कि वह हमारा नहीं रंजन और जूलिया का बच्चा होगा। मुझे तो उसे इस दुनिया में लाने के लिए साधन मात्र बनना है। यदि विदेश में इतनी सुख-सुविधाओं के बीच पलने के लिए किसी को अपना भी बच्चा देना पड़े तो बच्चे के भविष्य को देखते हुए कोई भी माता-पिता यह भी करने के लिए तैयार हो जायेंगे। रंजन उसका बचपन का सबसे अच्छा दोस्त है क्या हम उसके लिए इतना भी नहीं कर सकते?

हमारी पाँच वर्षों की शादी-शुदा ज़िन्दगी की सफलता का लाभ रंजन को मिला। विनोद ने अपनी बात मुझसे मनवा ही ली और मैं हमेशा की तरह एक आदर्श पत्नी का फर्ज़ पूरा करती हुई उसके बताए रास्ते पर चल दी। बात घर की ही थी इसलिए कोई विशेष लिखा-पढ़ी की ज़रूरत ही नहीं हुई। न इसके लिए जूलिया को ही भारत आना पड़ा। उससे फोन पर बात कर उसकी रज़ामंदी ही काफी थी।

पता नहीं यह हमारा भावनात्मक कदम था या जल्दबाज़ी में बिना सोचे-समझे उठाया हुआ कदम, लेकिन आगे का रास्ता बहुत कठिन था। रंजन की छुट्टियाँ खत्म होने को थी। जल्दी ही डॉक्टरी प्रक्रिया पूरी कर वह विदेश लौट गया। अब मेरी कोख में रंजन का बच्चा था। वह बेटा होगा या बेटी उसे रंजन और जूलिया अपने परिवार का कानूनन सदस्य बना लेंगे। रंजन अब भले ही दोस्त से बढ़कर परिवार का सदस्य हो गया था लेकिन मैं अपने शेष परिवार से कटती जा रही थी।

हर किसी को अपनी स्थिति समझाना बहुत कठिन था। नौ महीनों का यह सफर गुमनामी में जी कर तो पूरा नहीं किया जा सकता था। न ही यह प्रक्रिया छिपने वाली चीज़ थी। जब-जब अपनों को पता लगा, वे ख़ुशी-खुशी मुबारकबाद देने लगे। ऐसे में मेरा चेहरा उतर जाता। तब-तब सबको पूरी बात समझानी पड़ती क्योंकि बच्चे के जन्म के बाद उसे रंजन को सौपने की बात भी तो छिपाई नहीं जा सकती थी वर्ना लोग मेरे मातृत्व पर प्रश्न उठाने लगते। बात का पता लगते ही किसी को मुझसे सहानुभूति होती तो किसी को हमारे इस फैसले पर आश्चर्य होता। किसी के मन में कई प्रश्न उठते तो किसी के मन में जिज्ञासाएँ जाग उठती।

दिन पर दिन लोगों की नज़रों और बातों का सामना करना मेरे लिए कठिन होता जा रहा था। लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता था। यह सफर अब मंजिल पर जाकर ही ख़त्म होना था। हमारी अच्छी भली गृहस्थी में सन्नाटा पसरने लगा था।

यह कैसा परोपकार था जिसमें ना कोई खुशी थी, न आत्मिक सुख ही था बल्कि उलझने बढ़ने लगी थी। इससे ज़्यादा सुख तो भिखारी को मात्र दस रुपये देकर या भूखे को दो रोटी खिला कर मिलता है।

इस बार माँ बनने का अनुभव न तो सुखद था ना रोमांचकारी ही था। यह मातृत्व तन और मन पर एक बोझ था फिर भी ज्यों -ज्यों इस बोझ से मुक्ति का दिन करीब आ रहा था, त्यों -त्यों मन खुश होने की अपेक्षा कहीं गहरे कुएँ में डूबता जा रहा था। पल-पल मुझे अपना ही निर्णय गलत लगने लगा था। मन में कई सवाल उठने लगे थे। जो औरत अपने कैरियर, अपनी महत्त्वाकांक्षा के कारण माँ नहीं बनना चाहती; वह भला मेरे हाड़मांस के टुकड़े को पालने के लिए समय कहां से निकालेगी? बिना समय, बिना प्यार के इस बच्चे का भविष्य क्या होगा? अमेरिका में तो नौकर भी नहीं मिलते,कौन पालेगा इसे? क्या अकेला रंजन अपने काम के साथ इस नन्हीं सी जान को माँ की भाँति पाल पाएगा?

अपने वायदे के अनुसार समय रहते रंजन और जूलिया अमेरिका से आ गए। जूलिया भारत में पहली बार आई थी। दो दिन ससुराल में रह कर अपनों से मिलने-मिलाने के बाद वह भारत के प्रमुख दर्शनीय स्थलों के भ्रमण पर निकल गई।

आखिर वह दिन भी आ ही गया जिसका हम सबको इंतज़ार था। मैंने एक प्यारी सी नन्हीं परी को जन्म दिया। उसको देखते ही रंजन का चेहरा खुशी से चमक उठा। वह मेरा आभार व्यक्त करते नहीं थक रहा था लेकिन मैं उस नन्हीं सी जान की माँ बनकर ना खुश हो सकी ना रंजन के बार-बार किए गए धन्यवाद के बोझ को ही उठा पा रही थी। मेरा दिलो दिमाग चेतनाशून्य होता जा रहा था।

मन में रह-रह कर एक ही विचार उठ रहा था, हमारे बच्चे को लेकर कोई काग़ज़ी कार्यवाही या कानूनी लिखापढ़ी नहीं हुई है फिर मैं यह बच्ची रंजन को क्यों दूँ? इसके आने से हमारा परिवार भी तो पूरा हो जाएगा। सारांश को छोटी बहन मिल जाएगी और हमें एक प्यारी सी बेटी।

यह मैं क्या सोचने लगी थी? यह जानते हुए भी की यह रंजन की बेटी है और इसका तो जन्म ही रंजन और जूलिया के लिए ही हुआ है। क्या

आख़िर वह दिन भी आ ही गया जिसका हम सबको इंतज़ार था। मैंने एक प्यारी सी नन्ही परी को जन्म दिया। उसको देखते ही रंजन का चेहरा खुशी से चमक उठा। वह मेरा आभार व्यक्त करते नहीं थक रहा था लेकिन मैं उस नन्हीं सी जान की माँ बनकर ना खुश हो सकी ना रंजन के बार-बार किए गए धन्यवाद के बोझ को ही उठा पा रही थी। मेरा दिलो-दिमाग चेतना शून्य होता जा रहा था।

किस्मत लेकर आई है, यूं तो दो परिवारों से जुड़ी है लेकिन क्या माँ-बाप का पूरा प्यार इसे मिलेगा? इसे विदेश भेजती हूँ तो जूलिया का मातृत्व संदेह के घेरे में खड़ा नज़र आता है, यदि ज़िद करके उसे अपने पास रखती हूँ तो पिता के रूप में विनोद की भूमिका संदेहास्पद लगती थी। क्या वह देगा अपने दोस्त की बेटी को पिता का प्यार? शायद इसीलिये विनोद ने एक बार भी उस बच्ची को गोद में नहीं लिया था, ना प्यार से उसे आशीर्वाद ही दिया था।

जूलिया भारत भ्रमण से लौट आई थी। रंजन और जूलिया ने जल्द ही सभी काग़ज़ी कार्यवाही पूरी कर ली थी। जूलिया ने बच्ची को मेरी गोद से जिस अपनेपन से खुश होकर लिया और उसका माथा चूम लिया था, मेरे दिल को बहुत तसल्ली हुई।

बच्चा कुदरत का ऐसा करिश्मा है जो अपने लिए प्यार खुद उपजा लेता है। अपनों के दिल में अपनी जगह बना लेता है। जूलिया का व्यवहार देखकर मन थोड़ा आश्वस्त ज़रूर था लेकिन मैं चाहकर भी अपनी नन्हीं परी को भूल नहीं पा रही थी।

रंजन और जूलिया यानी बच्ची के कानूनी माता-पिता ने उसका नाम मोनिका रखा है। पता नहीं वे दोनों नन्ही मोनिका के साथ इतना व्यस्त हो गए हैं या अब वह हमसे कोई रिश्ता ही नहीं रखना चाहते या हो सकता है रंजन अभी भी विनोद के सम्पर्क में हो लेकिन विनोद यह सब मुझे ना बताता हो क्योंकि वह जानता है कि मैं मोनिका को लेकर परेशान हो जाऊँगी।

इन दस महीनों में मैंने अपनी सोच में मोनिका को पल-पल बढ़ते देखा है। कब वह पहली बार मुस्कराई होगी, कब पहचानने लग गई होगी, कब बैठने लग गई होगी, इतना ही नहीं वह कब-कब भूखी होती है.... यह भी हज़ारों मील दूर बैठी मैं जान जाती हूँ। रिश्ता ही ऐसा है लेकिन यह सब मैं किसी से कह नहीं सकती।

मैं जानती हूँ, अब इस घटना को एक बुरे हादसे की तरह भूल जाने में ही भलाई है। मेरी अपनी सेहत के लिए ही नहीं बल्कि अपने परिवार की सेहत के लिए भी। मुझे इस सच को स्वीकारना ही होगा। घर के इस वातावरण को बदलना ही होगा। अपने सीने पर पत्थर रखना ही होगा। आख़िर सारांश के भविष्य का भी तो सवाल है। उसकी अच्छी परवरिश इस तरह बुझे मन से तो नहीं हो सकती। विनोद भी तो हर दिन मुझे खुश रखने के लिए कितने यत्न करता है।

अपने ही विचारों में खोई मैं भूल ही गई की सारांश टीवी देखते हुए वहीं सोफे पर ही सो गया है। रात के नौ बज चुके हैं। विनोद अभी तक नहीं लौटा। उससे देरी का कारण जानने के लिए फोन उठाया ही था कि दरवाज़े की घंटी टनटना उठी। दरवाज़ा खोला तो सामने हाथों में साड़ी का डिब्बा, फूलों का गजरा और ढेर सारा खाने-पीने का सामान लिए विनोद खड़ा मुस्कुरा रहा था। मैंने भी सारी उदासी को झटक कर अपने से दूर किया और मुस्करा कर विनोद का स्वागत किया। सारांश को जगाया। सबने साथ खाना खाया फिर सारांश को उसके कमरे में सुला कर मैं जब बेडरूम में पहुँची तो विनोद मेरे इंतज़ार में जाग रहा था। आज विनोद का व्यवहार बहुत स्नेहिल है। मुझे फिर उसी जीवन में लौटा लाने की उसकी कोशिश आज अपने चरम

पर है। उसने मुझ से वही साड़ी पहनने की फरमाईश की जो वह लेकर आया है। मैं भी सब कुछ भूल कर वापिस अपनी गृहस्थी में रमना चहती हूँ। मैं उठी और वह साड़ी पहन कर आ गई।

विनोद की बाहों में सिमटी मैं अभी उसके प्यार में मोम की तरह पिघलने ही वाली थी कि उसकी बात सुनकर मैं बर्फ़ की तरह ठंडी पड़ने लगी। वह कह रहा था, ''रंजन का एक दोस्त भी तुम्हारी कोख किराये पर लेना चाहता है । जानती हो वह दोगुनी कीमत देने को तैयार है। वाह घर बैठे बिठाए बिना कुछ किए दस महीनों में पाँच लाख रुपया और क्या चाहिए?''

विनोद तो और भी बहुत कुछ कह रहा था, समझा रहा था लेकिन मैं तो जैसे न कुछ सुन पा रही थी, न कुछ समझ ही पा रही थी। पहली बार बहुत हिम्मत करके मैंने उसे समझाने के लिए मुँह खोला ही था कि वह चिल्ला उठा, ''पहले औरतें इतने-इतने बच्चे पैदा करती थीं, हम ही छह बहन-भाई हैं, तुम कोई अनोखी औरत नहीं हो....।''

पत्नी को बच्चा पैदा करने की मशीन समझने वाला विनोद अपने बच्चों की माँ बनने और दूसरों के लिए बच्चा पैदा करने का फर्क भी नहीं समझ पा रहा तो इसे कैसे समझा पाऊँगी कि एक औरत जिसे नौ महीने अपनी कोख में रखकर अपना खून पिलाती है, उसे किसी अनजान को सौंपते हुए उसके दिल के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। अपने बच्चे को पराये हाथों में सौंपने के बाद अपनी छाती में उतरते दूध और आँखों से बहते आँसुओं का वह क्या करे?

मेरा दिल हाहाकार कर रहा था। कोस रहा था विज्ञान की इस अधूरी खोज को जिसने नि:संतानों की गोद भरने के लिए किराये की कोख की खोज तो कर ली है लेकिन ऐसी कोई खोज नहीं कि जिससे बच्चे की नाल काटते ही वह किराये की माँ उस पूरी प्रक्रिया को भूल जाए। ना उसकी छाती से उस बच्चे के लिए दूध उतरे, न दिल में प्यार उमड़े, न कोई भावना जागे और न ही आँखों से आँसू टपकें।

तभी फोन की घंटी बज उठी। बड़े ही शान्त भाव से विनोद ने फोन उठाया और बोला, ''अरे भाई, इतने परेशान क्यों हो? कहा तो काम हो जाएगा। यह इंडिया है दोस्त, तुम्हारा अमेरिका नहीं, यहाँ आज भी पत्नी की डोर पति के ही हाथों में होती है। वह कटेगी या उड़ेगी यह पति ही तय करता है।'' विनोद के शब्द मेरे कानों में पिघला सीसा उड़ेल रहे थे। मेरी सुनने-समझने की शक्ति सुन्न पड़ती जा रही थी। मेरा रोम-रोम चीत्कार कर रहा था। विनोद फोन पर हंस रहा था।

''अरे भाई,परेशानी कैसी? अमेरिका जाकर महाभारत की कहानी भूल गए क्या? गांधारी सौ पुत्रों की माँ थी। तुम्हारी भाभी की तो वह तीसरी ही सन्तान होगी।''

उसकी हँसी मेरे दिल में नश्तर चुभो रही थी। अब तो मैं यह भी तय नहीं कर पा रही थी कि मुझे मोनिका को जन्म देने के लिए तैयार करने के पीछे वास्तव में उसकी रंजन से दोस्ती थी या वह ढाई लाख के नोटों का बंडल था जो मेरे इतने मना करने पर भी रंजन मेरे सामने रखकर चला गया था।

कहानी

डॉ. स्वाति तिवारी

चेंज यानी बदलाव

मुझे घर छोड़कर पापा के यहाँ आए 15 दिन हो गए, पर न जाने क्यों इस बार ये 15 दिन युगों की तरह कटे। न माँ से बात करना अच्छा लगता, न पापा का सामना करना। एक अपराधबोध-सा हमेशा बना रहता, जैसे मैंने अपनी लापरवाही से उनकी किसी बहुमूल्य वस्तु को खो दिया था। पूरी तत्परता से माँ और पापा मेरा ख़याल रख रहे हैं, जिसके पीछे झाँकती हुई उनकी संशय की चिन्ताएँ मुझे स्पष्ट दिखाई देती हैं। उन्हें डर है, कहीं मैं डिप्रेशन में कुछ कर न लूँ! कैसा दुर्भाग्य है यह? माँ-पापा को इस उम्र में मेरी तरफ से चिन्तामुक्त होना चाहिए, ब्याहता बेटी अपने घर-संसार में सुखी रहे; यही तो वे चाहते थे, पर उन्हें चिन्ता है मेरे भविष्य की- अब क्या होगा?

एक तीखा-सा खेद मन में जागा, अपने आपको कोसा भी - क्यों अभय के प्यार में उलझी? इससे अच्छा शायद वही रिश्ता रहता जो बड़ी चाची के मायके से आया था, पर अब? तब तो अभय ही दुनिया-जहान में सबसे अच्छा, सबसे निराला लगता था - एकदम विश्वासपात्र। और उसी अन्धे प्यार और विश्वास के कारण उसे सहर्ष जिन्दगी सौंपी थी, पूरी आस्था और विश्वास के साथ। चाची थोड़ी नाराज़ भी रही थी, पर मेरा तो दृढ़विश्वास था-प्रेम-विवाह ही सफल रहेगा। बड़े-बड़े दावों के साथ मैं अपने निर्णय पर अटल थी, पर रेत के महल साबित हुए मेरे दावे, उसी ने यूँ तोड़ा विश्वास। शुरू के कुछ दिन तो मेरे भीतर अभय के प्रति एक अन्धक्रोध था, जो सिर्फ अभय के अलावा कुछ और देख ही नहीं पा रहा था। लावे की तरह पिघलता वह क्रोध जो अभय का कुछ नहीं बिगाड़ सकता था, पर मुझे भस्म किए जा रहा था। पर एक माह में ही वह क्रोध अपनी आवेगात्मकता के अनुपात में शांत भी होने लगा, और मुझे अपनी नहीं, माँ और पापा की चिन्ता होने लगी। उनके बुढ़ापे को यूँ बिगाड़ देना ठीक नहीं है, मैं सोचने लगी कि मुझे स्वयं को सँभालना होगा। एक तेज प्रवाह की तरह अभय मेरे जीवन में आकर चला गया। एक ज्वारभाटा ही तो था उसका आना और जाना।

मैं उठ खड़ी होती हूँ, एक नए निर्णय के साथ। एक ठोस निर्णय ने मेरे अंदर के ज्वालामुखी को शांत कर दिया था। मैं माँ के सामने जाकर दृढ़विश्वास के साथ कहती हूँ, ''माँ, मैं कल जाना चाहती हूँ।''

''कहाँ? माँ चौंक उठीं।

''अपने घर।'' मैं कहती हूँ, ''हाँ, माँ! वहीं, वापस अपने उसी घर में।''

''क्यों, यहाँ तकलीफ है क्या?'' माँ थोड़ा गुस्से से बोलती हैं।

''हाँ, माँ! यहाँ रहते मुझे लगता है, मैं छोड़ी हुई औरत हूँ। यह अहसास मुझे डंक मारता है। वह घर मैंने नहीं छोड़ा है, माँ! वह मेरा घर है। मैं वहीं रहकर आगे पढ़ाई करूँगी और कुछ नया काम शुरू करूँगी। मुझे आपका और पापा का आशीर्वाद चाहिए।''

पिछले पाँच सालों से वहाँ रहते-रहते वहाँ की आदत-सी हो गई है। उस सबके बगैर यहाँ सब अटपटा-सा, अजनबी-सा माहौल क्यों लगता है? इस घर में तो मैंने उम्र के बीस बसंत देखे थे, पर वह घर मेरे सपनों से जुड़ा था, मेरा अपना घर।

''क्या वहाँ अभय के बगैर रह पाओगी?'' माँ का सहज-सा प्रश्न था।

''हाँ, ज़रूर। रहकर बताना चाहती हूँ और फिर वह घर हमारा है। उसके एक-एक तिनके को मैंने ही तो सँजोया था। क्या हक है उस पर अभय का?'' मैं माँ पर ही भड़क उठी थी।

''अच्छा, तेरे पापा से बात करूँगी।''

''हाँ, माँ! पर कुछ दिन तुम दोनों भी चलो मेरे साथ। वह घर हमारा है। उसे मैं यूँ ही बनाए रखूँगी, चाहे वह मेरे लिए यादों का कब्रिस्तान ही क्यों न बन जाए। अभय को जीवन में एकरसता पसंद

डॉ. स्वाति तिवारी

देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, व्यंग्य, समीक्षा, रिपोर्ताज, यात्रा-संस्मरण, कविताओं आदि का नियमित प्रकाशन। आकाशवाणी, दूरदर्शन और निजी टी.वी. चैनलों पर रचनाओं का प्रसारण-पटकथा लेखन, विष्णु चिंचालकर पर निर्मित फिल्म की पटकथा-लेखन, सम्पादन और सूत्रधार, परिवार परामर्श केन्द्रों पर आधारित लघु फिल्म 'घरौंदा ना टूटे' (निर्माण, सम्पादन और स्वर)

प्रकाशित कृतियाँ :

कहानी-संग्रह -क्या मैंने गुनाह किया, विश्वास टूटा तो टूटा, हथेली पर उकेरी कहानियां, छह जमा तीन, मुड़ती है यूँ ज़िन्दगी, मैं हारी नहीं, ज़मीन अपनी-अपनी, बैगनी फूलों वाला पेड़, स्वाति तिवारी की चुनिंदा कहानियां, अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन- वृद्धावस्था के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर केन्द्रित दस्तावेज, अकेले होते लोग, महिलाओं के कानून से संबंधित महत्त्वपूर्ण पुस्तक, मैं औरत हूँ मेरी कौन सुनेगा, व्यक्तित्व विकास पर केन्द्रित पुस्तक सफलता के लिए, स्व.प्रभाष जोशी पर केन्द्रित पुस्तक 'शब्दों का दरवेश', सवाल आज भी ज़िन्दा है (भोपाल गैस त्रासदी), ब्रह्म कमल एक प्रेमकथा (उपन्यास)

सम्मान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग राष्ट्रीय पुरस्कार, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा वागेश्वरी सम्मान, प्रकाश कुमारी हरकावत महिला लेखन पुरस्कार, अभिनव शब्द शिल्पी अलंकरण, पं. रामनारायण शास्त्री स्मृति कथा पुरस्कार,

सम्प्रति- मप्र शासन में जनसम्पर्क विभाग में अधिकारी।

सम्पर्क

1/9 चार इमली, गेस्ट हाऊस के सामने, भोपाल - 462016 (मध्यप्रदेश) - भारत

फोन निवास: 0755-2421441

कार्या.: 0755-4096312

मोबाईल : 91-9424011334

stswatitiwari@gmail.com

नहीं थी, वह बदलाव चाहता था, अब मैं ऐसे बदलाव लाना चाहती हूँ कि वह देखता रह जाए।''

माँ और पापा के साथ मैं फिर लौट आई थी अपने उसी घरौंदे में, जहाँ अब केवल गृहस्थी का सामान था। एक बिखरे रिश्ते का वर्तमान अपने सुखद दाम्पत्य की यादों के अतीत के साथ मौजूद था। घर में सब-कुछ वैसे ही मौजूद था, पहले की तरह अपने पूरे वजूद के साथ, नहीं था तो केवल मेरा अपना वजूद। अभय के साथ मैं भूल गई थी कि मैं एक अलग व्यक्तित्व हूँ, मैंने ढाल लिया था स्वयं को अभय के वजूद में।

मैं शायद सोचना ही भूल गई थी अपने बारे में। नहीं-नहीं, मैं जो सोचती थी, जो करती थी, उसके केन्द्र में ही अभय होता था। 'क्या बनाना है? क्या सजाना है? क्या पहनना है?' सब-कुछ अभय की पसंद के अनुसार करने लगी थी। मैं कहीं थी ही नहीं जैसे। क्यों इतना निर्भर हो गई थी उस एक शख्स पर? अभय की पसंद-नापसंद इतनी हावी थी मुझ पर कि लगा, मैं खोल के अंदर जी रही थी अब तक-अण्डे के अन्दर पनपे उस चूजे की तरह, जो समझता है, बस इतना-सा ही है संसार। पर आज अब अचानक उस खोल के टूट जाने पर मैं आश्चर्यचकित हूँ।

घर में लौटनेवाले वे क्षण बड़े कठिन थे। दरवाज़े पर टँगी नेमप्लेट 'अभय-मीनू' से पहला साक्षात्कार एक मीठी-सी कसक की तरह लगा, पर जाने कहाँ से एक हिम्मत, एक शक्ति आ गई थी और मैंने हाथ बढ़ाकर अभय शब्द उखाड़ दिया। अब वहाँ केवल मीनू नाम था। मैंने प्रवेश किया देहरी के अंदर और शुरू किया अपने बिखरे वजूद को समेटने का काम।

रात-भर सोचती रही, सो नहीं पायी थी। साथवाली खाली जगह जीवन में आयी रिक्तता का अहसास कराती रही रात-भर। अपने आप से बुदबुदाती रही, 'तुम पागल हो, मीनू, एकदम पागल।' पर मैं पागल भी कहाँ हूँ! कितना अच्छा होता अगर मैं पागल हो जाती। तब कोई जिम्मेदारी, कोई लोकलाज नहीं; चीखो-चिल्लाओ, कोई डर नहीं। पर पागल होने जैसी भाग्यवान मैं कहाँ? मैं तो चीखकर, चिल्लाकर अपनी भड़ास भी नहीं निकाल सकती; माँ या बाबूजी को सुनकर कुछ हो गया तो?

यादों के ऐसे कितने ही टुकड़े हैं, जो रात-दिन याद आते हैं, पर यादें कितनी पीड़ा देती हैं! हाँ, कानों में गूंजती है अभय की वह चुनौती। मैं जुट जाना चाहती हूँ अपने उस वजूद के लिए जिसे मैं अभय के साथ होने पर पता नहीं कब-कहाँ, किस मोड़ पर छोड़ आयी थी। मैं समझती थी, ब्याह के बाद जो कुछ है वह पति के लिए ही है। पति-प्रेम एक ऐसी जादू की छड़ी है जो जीवन में दुःख-दर्द आने ही नहीं देती, पर मैं गलत थी। मात्र कुछ वर्षों में मैं स्वयं को भूल गई थी। सिर्फ एक समर्पिता थी जो अपना अस्तित्व तलाशती थी;

जीवन में अभय के साथ ब्याह के निर्णय के बाद शायद ही कोई निर्णय मैंने लिया हो। अभय अक्सर मज़ाक में ही कह देता था, ''तुम कभी अपने लिए निर्णय नहीं लेती, कब तक यूँ ही मेरे निर्णय में हाँ करती रहोगी?''

''तुम्हें क्या तकलीफ होती है?''

''नहीं, मैं तुम्हें अपनी छाया बनाकर रखना नहीं चाहता। मैं डरता हूँ, मीनू, छाया कभी पीछा नहीं छोड़ती, इसलिए।''

''नहीं। तुम अपने को मुझसे अलग पहचानों, महसूस करो; क्योंकि जिन्दगी में केवल अपना वजूद काम आता है, समझीं?''

यादों के ऐसे कितने ही टुकड़े हैं, जो रात-दिन याद आते हैं, पर यादें कितनी पीड़ा देती हैं! हाँ, कानों में गूंजती है अभय की वह चुनौती। मैं जुट जाना चाहती हूँ अपने उस वजूद के लिए जिसे मैं अभय के साथ होने पर पता नहीं कब-कहाँ, किस मोड़ पर छोड़ आयी थी। मैं समझती थी, ब्याह के बाद जो कुछ है वह पति के लिए ही है। पति-प्रेम एक ऐसी जादू की छड़ी है जो जीवन में दुःख-दर्द आने ही नहीं देती, पर मैं गलत थी। मात्र कुछ वर्षों में मैं स्वयं को भूल गई थी। सिर्फ एक समर्पिता थी जो अपना अस्तित्व तलाशती थी; कभी पति की बाँहों में, कभी पति के चरणों में और कभी पति के घर में।

मेरा समर्पण इतना व्यर्थ निकला कि अभय उस एकरसता से कब बोर हो गया, ऊब गया मुझसे, मुझे पता ही नहीं लग पाया। जब पता लगा तब तक बहुत देर हो चुकी थी। पिछले कुछ समय से मुझे लग ज़रूर रहा था कि अभय परेशान है, खोया-खोया रहता है। कभी लम्बे समय तक हाथ पकड़े बैठा रहता; जैसे डर रहा हो कि कहीं मेरा हाथ छूट न जाए। हो सकता है हमारा प्यार उसके अन्दर चल रहे द्वंद्व में उसे डराता हो या फिर वह छोड़ देने से पहले की पकड़ थी। जाने कैसा ठण्डापन था उन दिनों के स्पर्श में। तब मैं समझी, अभय परेशान होगा किसी बिजनेस प्रॉब्लम में। उसके चेहरे से लगता था कि वह घुटन महसूस कर रहा है, कहीं उलझा हुआ है। कभी मैं समझती, वह कहीं दूर है, बहुत दूर; मुझसे हज़ारों मील दूर। बस, केवल वह शरीर से मेरे साथ है और उसका अपने पास होने का भ्रम पालती रही।

कभी-कभी अभय प्रगाढ़ अन्तरगंता में डूबता-उतराता रहता, पर अब लगता है, वह भुलावा था या छलावा?

मैं कहती, ''आपको आजकल क्या हो गया है? इतने चुप, इतने खोये-खोये क्यों रहते हैं?''

''कुछ नहीं! फिर कभी बताऊँगा।''

मैं ज़्यादा परेशान भी नहीं करती। अभय कुछ मूडी है, बात का सीधा जवाब कभी नहीं देता। फिर लम्बा-चौड़ा कारोबार, हज़ारों उलझनें हो सकती हैं। पर पिछले एक साल से अभय अक्सर दिल्ली से टूर पर रहता। अब तक हर दौरे पर एक बार तो मुझे भी ले जाता रहा था पर पिछले एक साल से दिल्ली के टूर पर मुझे चलने को नहीं कहा था।

इस बार जाते वक्त वादा किया था अभय ने, शादी की वर्षगाँठ पर वह मुझे दिल्ली ले जाएगा और एक खूबसूरत तोहफा भी देगा। मैं उसी वादे पर अटकी इंतज़ार कर रही थी। दो माह का अकेलापन था। इतना लम्बा टूर अभय ने पहले कभी नहीं किया था। मैं कोशिश करती खुद को व्यस्त रखने की। कभी शॉपिंग करती, फिल्म देखती, कभी सेल में जाती, किचन का नया सेट, बेडकवर, परदे, पौधे बदलती रहती। यूँ भी अभय को बदलाव

चाहिए। उसे घर की सजावट में चेंज पसंद है। वह अक्सर कहता, ''बदलती रहा करो ये चादर, ये कवर, ये परदे। मैं बोर हो जाता हूँ एक-सी व्यवस्था से।''

पर अभय, तुमने इस हद तक बदलाव पसंद किया, यह तो मैं सपने में भी नहीं सोच सकती। तुमने तो मुझे भी बदल डाला। शायद तुम मेरे अस्तित्व को पलंग पर बिछी चादर की तरह समझ बैठे। मैं कोई तुम्हारे ड्राइंग-रूम में रखा फूलदान नहीं थी। उस दिन शाम मिसेज कांत के घर पार्टी थी गृहप्रवेश की। न चाहते हुए भी मुझे अकेले ही जाना था। वहीं मुलाकात हो गई कांत की 'दिल्लीवाली बुआजी'' से।

''अरे बुआजी, आप?'' मैं चहक उठी थी। वे मुझे अच्छी लगती हैं, पहले कई बार मिल चुकी थीं।

''हाँ, मीनू, कैसी हो.... ?''

''एकदम ठीक!'' मैं बोल गई, ''दिल्ली आने वाली हूँ।'' मैंने उत्साह से कहा।

''अभय तो वहीं है आजकल।'' कुछ रुककर मैंने फिर कहा।

''क्या अक्सर वहीं रहने लगा है?'' पूछते हुए उनका चेहरा एकाएक गंभीर हो गया। उनकी आँखों में एक अजीब-सा भाव था जिसमें व्यंग्य भी था, दया भी।

''मीनू! तुमसे बात करनी है। चलो, ऊपर बॉलकनी में बैठते हैं।'' वे सहज होते हुए बोलीं।

''हाँ-हाँ, चलिए!'' मैं आगे चलने लगी।

वे बात का सूत्र जमाते हुए बोलीं, ''दुबली लग रही हो।''

''नहीं तो, सारा दिन खाती रहती हूँ, अकेली जो हूँ।''

''हाँ! मैं जानती हूँ पर तुम विरोध क्यों नहीं करती?'' वे कहने लगीं।

''किस बात का?''

''अभय के दिल्ली जाने का। तुम रोकती क्यों नहीं उसे?''

''दिल्ली जाने से क्यों रोकूँ भला!''

''तुम्हें नहीं मालूम? अकेली क्यों रहती हो, यही समझाना चाहती हूँ, पर तुमसे कैसे कहूँ? सोचती हूँ कि तुम मुझे बुआ कहती हो, इस नाते तुम मेरी बच्ची जैसी हो, तो मेरा फर्ज़ बनता है।''

बदलाव... बदलाव... बदलाव... शब्द का एक बोझिल भार मुझ पर लदने लगा... एक दर्द था, सर्द-सा दर्द। मैं खामोश थी, सजल नेत्रों से किसी के सामने सरलता से खुलती-बिलखती नहीं हूँ मैं। शायद यूँ खुल पाना मेरा स्वभाव ही नहीं। मैं अपनी पनीली आँखों को झुकाती भी नहीं, क्योंकि पानी टपक गया तो कमज़ोर पड़ जाऊँगी।

वे चुप हो गईं।

मैं विस्मयभरे नेत्रों से उन्हें देखती रही।

''मीनू!''

''जी!''

''क्या तुम सचमुच नहीं जानती?''

मैंने उनका हाथ पकड़ लिया, ''क्या बात है?''

''बेटी! अभय दिल्ली बिजनेस के काम से कम और कुछ दूसरे ही कारण से ज़्यादा जाता है। अभय के साथ एक लड़की रहती है। मैंने समझा, तुम्हें पता होगा।''

''नहीं तो!'' मैंने कहा, ''ऐसा तो हो ही नहीं सकता। अभय मुझसे प्यार करता है... वह मेरे बगैर जी भी नहीं सकता....।''

''हमने अपने आँखों से देखा है। वे सामने वाली मल्टीस्टोरी के फ्लैट में रहते हैं। शायद वहाँ के लोग उन्हें पति-पत्नी ही समझते हैं।''

मैं असहज थी उस वक्त। मन में थी लावा उगलती एक खीझ। मैं बुदबुदाने लगी थी, ''बुआ! क्यों मेरे सुख-चैन को यूँ छिन्न-भिन्न करना चाहती हो! न ही बतातीं तो अच्छा था। मैं अपने इस खोल में जी रही थी, क्यों अभय और मेरे रिश्ते का सच अनावृत्त कर दिया! मेरे जीवन का भ्रम, जिसे मैं सच समझे बैठी थी, क्यों तोड़ दिया! तुम्हारे एक सच से मेरे सारे सुख किन अदृश्य छिद्रों से बाहर निकल गए, मैं नहीं जानती। कितना सुख था अभय की पसंद के अनुसार घर की सजावट में बदलाव लाने का।'' बदलाव... बदलाव... बदलाव... शब्द का एक बोझिल भार मुझ पर लदने लगा... एक दर्द था, सर्द-सा दर्द। मैं खामोश थी, सजल नेत्रों से किसी के सामने सरलता से खुलती-बिलखती नहीं हूँ मैं। शायद यूँ खुल पाना मेरा स्वभाव ही नहीं। मैं अपनी पनीली आँखों को झुकाती भी नहीं, क्योंकि पानी टपक गया तो कमज़ोर पड़ जाऊँगी।

''तुम जानती होगी, हम तो यही समझे थे।''

''नहीं...।''

बुआ ने फिर मेरा हाथ पकड़ा था। वे कोमल स्वर में मुझे सान्त्वना दे रही थीं, ''मुझे क्षमा करना, मीनू, मैंने, तुम्हारा दिल दुखाया। तुम्हारे पत्नीव्रत को चोट पहुँचाई। तुम एक अदृश्य विश्वास के सहारे खड़ी थीं, जिसे मैंने जाने-अनजाने तोड़ दिया।'' वे चली गईं।

मन में डर की नींव शायद उसी शाम पड़ी थी। रात का भयावह अँधेरा मेरे मन में भी भरा था। उस रात अभय के बदलाव की हद जानने के बाद मन चकनाचूर था। क्यों मैं भी बदल दी गई, कैलेण्डर के पन्ने की तरह?

अगले दिन सुबह-सुबह ही अभय ने दरवाज़े पर दस्तक दी थी। मैंने दरवाज़ा खोला, अनमने-से भाव के साथ।

''क्यों, तबीयत खराब है क्या?''

मैं चुप रही।

''तुम्हारा चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है?''

''चाय पिओगे?''

''हाँ...''

चाय का प्याला देते वक्त मैंने महसूस किया था कि अभय फिर उलझन में है।

''क्या बात है, मैं तुम्हें उदास नहीं देख सकता।''

''तो देखना ही छोड़ दो।'' मैं आवेश में बोल गई।

अभय बगैर हिले-डुले अपनी जगह बैठा रहा था।

''कल दिल्लीवाली कांत की बुआजी मिली

थीं, तुम्हारे फ्लेट के सामने वाली मल्टीस्टोरी के फ्लेट में ही रहती हैं।''

''ओह! तो यह बात है!''

मेरे होंठ थरथराने लगे थे और आँखें आँसुओं से लड़ रही थीं, ''तुमने कभी कुछ बताया क्यों नहीं, अभय!''

''क्या?''

''यही कि दिल्ली में तुम्हारे समर्पित व्यवहार से एक ताकत, एक शक्ति है जो मुझे रोक देती थी।''

कहते-कहते अपने बिखर पड़ने के क्षण को समेट लेती हूँ मैं।

''चलो, अच्छा हुआ, तुम्हें पता चल गया! तुम्हें बताने और समझाने के एक कठिन द्वंद्व से बच गया मैं।''

''फिर... ?''

''फिर क्या, मैं उसके साथ रहना चाहता हूँ।''

चुप रही मैं।

''तुम चाहो तो ये घर, ये सामान सब तुम्हारे पास ही रहेगा... तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। जितना रुपया चाहोगी, तुम्हें मिलता रहेगा... मुझे समझने की कोशिश करो, मीनू!''

''अभय, यह दान कर रहे हो?''

''नहीं...।''

''तो फिर?''

''मैं तुम्हें परेशानी में डालना नहीं चाहता।''

''अभय, तुम भूल गए। यह घर... यह तो पहले से मेरा है; मेरे पापा का दिया हुआ, और जो रुपया है उसका मूल भी मेरा ही था। मेरे ख़याल से तुम तो तब भी खाली हाथ थे और अब भी।''

अभय की आँखें भी छलछलाती हुई लबालब हो रही थीं। उसने एक बार फिर मेरा हाथ पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया, पर मैं हट गई थी।

अब इस स्पर्श में कुछ नहीं है। सब-कुछ बदल गया था। अब हमारे रिश्ते बदल गए थे, जिनका कोई दूसरा नाम नहीं था। नये सिरे से हमें लिखनी होंगी जीवन के रिश्तों की इबारतें।

क्यों हुआ ऐसा? एकदम पसंद की मिठास को पीते-पीते कोई बेहद फीका-सा स्वाद हमारे बीच आ गया था।

शाम होते-होते अभय चला गया था, बगैर बताए, फोन के पास एक पत्र छोड़कर, जिसमें

आज मैं उस शहर में जज के पद पर प्रमोशन के साथ पदस्थ हूँ। जी हाँ, उसी शहर में। कभी अपने लिए सही निर्णय न कर पाने वाली मैं मीनू उसी कुर्सी पर हूँ, जहाँ दूसरों के लिए भी निर्णय देने होते हैं; ऐसे निर्णय जो जीवन के मायने बदल सकते हैं।

लिखा था, ''मुझे माफ कर देना, मीनू! मैं जा रहा हूँ, शायद लौटकर न आऊँ। न ही आऊँ तो बेहतर रहेगा, क्योंकि तुम्हारी आँखों में उठते प्रश्नों के उत्तर मेरे पास नहीं हैं। ऐसा क्यों हुआ, कब हुआ, मैं नहीं जानता...।''

पत्र तह करते वक्त मैं बोल गई थी, ''तुम ज़रूर आओगे, अभय, एक दिन ज़रूर... पर अब बदलाव मेरे होंगे, मेरे अपने।''

दस साल बाद एक दिन फिर अभय मेरे सामने खड़ा था। दस सालों का यह अंतराल कैसे कटा, यह बताना अब ज़रूरी नहीं रहा। हाँ, मैं ज़िन्दा रही; मैंने आत्महत्या नहीं की, पर बदलाव की हद मैंने भी पार कर ली थी।

आज मैं उस शहर में जज के पद पर प्रमोशन के साथ पदस्थ हूँ। जी हाँ, उसी शहर में। कभी अपने लिए सही निर्णय न कर पाने वाली मैं मीनू उसी कुर्सी पर हूँ, जहाँ दूसरों के लिए भी निर्णय देने होते हैं; ऐसे निर्णय जो जीवन के मायने बदल सकते हैं।

एक दिन कोर्ट पहुँची तो आँखें विस्मय से फटी रह गयीं। सामने चालीस साल की उम्र में ही साठ साल के प्रौढ़ की तरह अभय खड़े थे। फाइल सामने थी। मिसेज सुमन सान्याल अपने पति अभय से तलाक चाहती हैं। केस में आरोप था - अभय बच्चे को जन्म देने में अक्षम है और सुमन माँ बनना चाहती है।

अभय आश्चर्यचकित थे। मुझे देखकर उनकी आँखें प्रश्नोत्सुक थीं। बदलाव चाहने वाले अभय शायद बदलाव के क्रम में मुझे फिर पसंद कर रहे हों !

आज मुझे निर्णय देना था, पर अभय तो मेरे मन के कठघरे से बहुत पहले ही मुक्त हो गए थे। आज वे एक पत्नी के नहीं, एक जज के कठघरे में खड़े थे और निर्णय करने वाली थी मीनू, जिसे अभय निर्णय लेने में कमज़ोर कहते थे। सुमन सान्याल भी सामने थी-साँवली, दुबली-सी बंगालिन लड़की, जिसने मेरे जीवन में यह बदलाव ला दिया था। मेरे अपराधी तो शायद दोनों ही थे। एक तेजस्वी एकाग्रता लाते हुए मैंने आँखों पर चश्मा चढ़ाया, पर सुमन के वकील के न आने पर केस मुल्तवी हो गया। अभय और सुमन चले गये। मैं शाम पांच बजे तक अनमनी-सी कोर्ट में ही बैठी रही। शाम को जाने के लिए बाहर निकली तो अभय सामने खड़े थे।

''मीनू, कैसी हो... ?''

''अच्छी हूँ...''

''मीनू, अब तो तुम्हें पता चल गया होगा कि मैं....''

''अभय, मुझे तो तब भी पता था। तुम्हें याद है, माँ के कहने पर हमने एक बार मेडिकल चेकअप करवाया था.... ?''

''हाँ, पर रिपोर्ट यही थी, मैंने तुम्हें नहीं बताया था, यह सोचकर कि तुम सच स्वीकार नहीं कर पाओगे।'' मैं बोलते-बोलते रुआँसी हो गयी।

''हाँ...''

''और मैंने तुम्हें इसलिए धोखा दिया क्योंकि मैं पिता बनना चाहता था। मैं समझा कि तुममें कमी है, तुम कभी माँ नहीं बन सकती।''

''....''

''मीनू, मुझे क्षमा कर दो, प्लीज़....''

तभी मेरे पति विजय गाड़ी लेकर मुझे लेने आ गए और मेरी चार वर्षीया बेटी दौड़कर मुझसे लिपट गई, 'मम्मी-मम्मी' कहते हुए।

''मीनू... यह तुम्हारी बेटी...''

''हाँ, अभय, बदलाव की एक हद यह भी है। इनसे मिलो, ये मेरे पति हैं-विजय।''

''मीनू, जल्दी चलो, हमारी टिकिट बुक है और हम लेट हो रहे हैं।'' कहते हुए विजय मुझे खींच ले गए, बिना अभय की तरफ कोई ध्यान दिए।

'हाँ, यही सच है...।' मैं उनके साथ गाड़ी की ओर तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए सोच रही थी।

व्यंग्य

हरीश नवल

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू

तोता-मैना का किस्सा तो आपने सुना ही होगा । मैना स्त्री जाती का पक्ष लेकर पुरुषों के अत्याचारों का वर्णन कथाओं में करती है और तोता पुरुषों का साथ देता हुआ स्त्री जाती की बेवफाई के उदाहरण देता है । मैना तो केवल मैना ही है पर तोता तो मिट्ठू भी है । मिट्ठू यानी पालतू तोता जिसे जो सिखाओ वह उसे बिना जाने-बूझे सीखकर रटता रहता है, यहाँ तक कि आपने उससे पूछा, ''मिट्ठू, चूरी खाओगे ?'' वह जब जबाब में प्रश्न दोहरा देगा, ''मिट्ठू चूरी खाओगे?'' तथा साथ ही उत्तर भी देगा, ''खाऊँगा- खाऊँगा।'' यानी वह समझता हुआ भी नासमझ ही होता है । जनाब, आप जानते ही हैं कि समझते हुए अनजान रहता व्यक्ति कैसा होता है, ठीक उस जागे हुए व्यक्ति की भांति जो सोने का अभिनय करता है तथा जिसे जगाने पर भी जगाया नहीं जा सकता । ऐसे तोते की भांति अपने बारे में ही निरंतर रटते रहने वालों को भी 'मिट्ठू' कह दिया जाता है । वैसे शब्दकोश में मिट्ठू शब्द का एक अर्थ मीठा बोलने वाला भी है, परन्तु साहब, आप तो जानते ही हैं चाहे कितना मीठा क्यों न बोले पर यदि अपने ही बारे में बोलता रहे तो सुनने वाला ईश्वर को कोसने लगता है जिसने उनके कान ऐसे बनाये हैं कि वे किसी अदृश्य स्विच से कुछ देर बंद नहीं किये जा सकते ।

मियाँ का अर्थ समझते हैं न आप ? मियाँ यानी पति, यह भी पुरुष जाति की ही एक कोटि होती है, अब यह न पूछिये कि कैसी जाति होती है, उच्च या अधम । जिस भले व्यक्ति ने यह कहावत या मुहावरा (जो भी आप समझें), बनाया होगा, तो मेरे ख्याल से वह स्त्री रहा होगा । जहाँ उसके या अन्य कोई मियाँ खुद अपने मुँह मिट्ठू बन रहे होंगे, दूर की हाँक रहे होंगे तभी इसका निर्माण किया होगा और उस मियाँ को दुत्कारा भी होगा कि वह ऐसा न करे, इतना बढ़-चढ़कर बोलने की ज़रूरत क्या है, पर वह नहीं मानता होगा और तब से अब तक वह अपने मुँह मियाँ मिट्ठू ही बन रहा है । 'कहावतकोश ' में मियाँ के नाम से जो दूसरी कहावत मशहूर है उसमें भी मियाँ की दुर्गत ही हुई है, उसी की जूती जो काफी भारी रही होगी, उसी के सर पर मारी गयी है।

वास्तव में दोस्तो मिट्ठुओं की सद्गति कम और दुर्गति प्राय: अधिक ही होती है। दैवयुग में असुर मिट्ठू बने तो सुरों से उन्हें हारना पड़ा। यही नहीं, समुद्र मंथन में भी जो बढ़िया चीज़ें थीं वे भी मिट्ठुओं को नहीं मिल सकीं, अपयश अलग से मिला ।

त्रेता युग में रावण अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बना, बाली बना, दोनों ही अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे, दोनों ने दूसरों की स्त्रियों को छीना और दोनों को ही भगवान राम के हाथों शरीर गंवाना पड़ा, पल में ही सारा मिट्ठूपन ठेके से बनी दीवार की भांति गिर पड़ा । रावण अपने मुँह कितना बड़ा मिट्ठू होगा, इसकी कल्पना आप इसी से कर सकते हैं कि उसके दस मुँह थे।

द्वापर युग में कंस ने देवकी की संतानों का विध्वंस करने का पक्का निश्चय कर रखा था । मियाँ कंस तो अपने युग के सबसे बड़े मिट्ठू थे ..... इंसानियत उनके घर में दासी की भांति पानी भरती थी, शराफ़त उनके महल से बीस कोस दूर रहती थी, पर उनका मिट्ठूपन एक भले ग्वाल-बाल ने ही झाड़ दिया। पूतना, बकासुर, शकटासुर आदि उनके साथियों को उस ग्वाल बन्धु ने स्वर्ग की राह दिखा दी थी, यहाँ तक कि विषैले नाग से भी गो-ग्वालों ने पूछ ही लिया था कि 'तेरा क्या होगा कालिया?' इस द्वापर में ही आपको मालूम है कि महाभारत का युद्ध हुआ था। कौरवों का शतक पूरा था और पाण्डवों की टीम में केवल पाँच थे । कौरवों का चीफ दुर्योधन अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बना । कृष्ण के पाँच गाँव माँगने पर वह तो सुई की नोंक जितनी ज़मीन भी देना नहीं चाहता था जबकि उस ज़माने में ज़मीन की, प्रापर्टी की कीमत इतनी ऊँची नहीं थी । ऐसे मियाँ मिट्ठू के दु:शासन जैसे सहयोगी थे जो अपने को इतना तीसमारखाँ समझते थे कि द्रौपदी के प्रति ही दुर्भावना रखने लगे । परन्तु उसके सभी तीरों को कृष्ण ने तोड़कर फेंक दिया । महाभारत युद्ध के बाद पाण्डवों को तो फिर स्वर्ग की राह मिली, परन्तु कौरवों को नरक का दारुण दु:ख भोगना पड़ा । यदि उस समय वे अपने आप मुँह मियाँ मिट्ठू न बनते और पाण्डवों को हस्तिनापुर में पाँच प्लाट ही दे देते तो उनकी दुर्दशा नहीं होती ।

अब आइये कलियुग पर । कितने ही उदाहरण हैं यहाँ तो । अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने वालों की दैवयोग से जनसंख्या अपार रही है । सिकन्दर से लेकर नादिरशाह, ज़ार से लेकर हिटलर-मुसोलिनी तक कितने ही तानाशाह अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बने, विश्व विजेता बनने के ख्वाब को पूरा करने के लिए आम जनता और मानवता का शोषण करते रहे परन्तु अपने सपनों को कहाँ पूरा कर पाए, सदा ही विजेता कहाँ रहे अंत में पराजित ही हुए । हिटलर सा मियाँ मिट्ठू तो दुर्लभ है । वह तो अपने वंश के रक्त को सबसे शुद्ध मानता था । पूरी दुनिया पैरों तले रौंदने की महत्त्वाकांक्षा उसके मन में थी परन्तु उसका हाल क्या हुआ, जानते ही है आप लोग कि उसने आत्महत्या की । आत्म-प्रवंचक अपनी आत्म की तो हत्या कर ही चुका था, उसे आत्महत्या भी

करनी पड़ी, वह भी ज़मीन पर नहीं ज़मीन के नीचे बने सेलर में यानी जीते जी नरक की भट्टी उसके लिए सुलगी ।

अपने आस-पास के प्रवेश में कितने ही मियाँ मिट्ठू आप रोज़ देखते होंगे। आप उन पर हँसते भी होंगे, रोते भी होंगे। बेचारे कितने दिवास्वप्न देखते हैं और वैसा ही सच समझकर आचरण करते हैं। एक अजीब-सा आचरण करते हैं । एक अजीब-सा आवरण उनके चारों ओर होता है जिसे वे भ्रमवश अपना महिमा मंडल समझते हैं। यदि वे किसी कार्यालय में बॉस हैं तो उनका कथन होगा, 'ऑफिस में मेरे पहुँचते ही चुप्पी छा जाती है, सब लोग सर झुकाकर काम में रत हो जाते हैं, क्या मजाल है कि मेरी किसी आज्ञा को कोई मानने से इंकार कर दे ।' यह दीगर बात है कि जब पिछले महीने आप अचानक उनके ऑफिस में गए थे तो आपने पाया था कि वे सरे आम अपने बॉस से गालियों की पिपरामेंट टिकियों की भांति खा रहे थे । यदि यह मियाँ मिट्ठू कहीं क्लर्क हो वे अपने रुतबे को बताते हुए कहेंगे, ''मैं जिस दिन ऑफिस नहीं जाऊँ तो काम ही रुक जाता है । क्या ए.ओ.,क्या डिप्टी , सभी को जहाँ कुछ समझ में न आए तो मुझे ही बुलाते हैं, मेरे समझाने पर ही उनकी समझदानी में कुछ भरता है। वो तो तरक्की देना चाहते हैं पर यहाँ कौन परवाह करता है, अपन राम तो यहाँ आनन्द से हैं ।'' अब आपसे गुज़ारिश यह है कि आप अगले हफ्ते उनके ऑफिस जाने का जो कार्यक्रम बना रहे हैं उसे रद्द ही कर दें क्योंकि आपसे उनके ऑफिस में उनकी दशा देखी नहीं जाएगी । वे हाथ जोड़े, आँखें सिकोड़े, चापलूसी में लगे होंगे पर कोई उनकी ओर ताक भी नहीं रहा होगा ।

आपका बड़प्पन तो इसी में है कि आप ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की भांति ही मियाँ मिट्ठुओं का सम्मान करें । आपने सुना ही होगा कि एक ही ट्रेन में सफ़र करके स्टेशन पर उतरे विद्यासागर के पास ही एक मियाँ मिट्ठू खड़े थे और कुली की तलाश कर रहे थे । वे साहबी ठाठ-बाट में थे और विद्यासागर जो साधारण वस्त्रों में थे, उन्हीं को कुली समझ साहबी मियाँ मिट्ठू ने अपना बोरिया-बिस्तर उठाने के लिए कहा था, जिसे ईश्वरचन्द्र जी ने सहर्ष शिरोधार्य किया । जानते ही होंगे आप कि साहब कहाँ जा रहे थे, वे जा रहे थे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का भाषण सुनने । जब वे सभा में पहुँचे होंगे तो बस तभी से मुहावरा बना होगा, ''घड़ों पानी गिरना।''

भले ही आपको कितने ही ख़रगोश मिलें और रेस लगाने के लिए चेलेंज दें पर आप कछुए ही बने रहें । धीरे-धीरे अपने लक्ष्य की ओर वैसे ही चलते रहें जैसे अर्जुन काठ की चिड़िया की आँख को ही लक्षित करता था । मियाँ मिट्ठू सदैव चिड़िया की आँख के स्थान पर पूरी चिड़िया ही नहीं, पूरा वृक्ष ही नहीं बल्कि आसमान भी देख रहे होते हैं, जिसके नीचे पेड़ उगा होगा । अत: मेरी सलाह आप सबको यही है कि आप कुछ भी बनें पर अपने मुँह मियाँ मिट्ठू न बनें ।

संस्मरण

बलिदान

शशि पाधा

जम्मू-कश्मीर राज्य में स्थित पीर पंचाल की पहाड़ियों में गुज्जर- बकरवाल जाति के लोग रहते हैं । ये लोग गर्मियों में ऊँचे पहाड़ों पर रह कर अपने माल मवेशी पालते हैं और सर्दियों में अपना पूरा परिवार लेकर मैदानों में आ जाते है । भेड़-बकरियाँ ही इनकी सोने -चाँदी की निधि होती है । दूध,घी तथा ऊनी वस्त्र बेच कर यह लोग अपना जीवन यापन करते हैं । चूंकि यह लोग जंगलों में, खुले में रहते हैं अत: अपने पशुओं और बच्चों की रक्षा हेतु कुत्ते अवश्य पालते हैं । अपने स्वभाव के अनुसार सदैव सतर्क रहने वाला यह प्राणी अन्य जंगली जानवरों से इनकी रक्षा करता है ।

खैर, मैं आपको आज ऐसे ही एक प्राणी 'मोती' से परिचित कराना चाहती हूँ जो भारतीय सेना की स्पेशल फोर्सेस की एक महत्त्वपूर्ण यूनिट का प्रिय सदस्य था । (इस पलटन की विशेष बात यह है कि इस में सम्मिलित होने वाले सैनिकों का बहुत कठिन प्रशिक्षण होता है । प्रशिक्षण के बाद चुने हुए सैनिकों तथा अधिकारियों को एक विशेष चिह्न 'बलिदान'(बैज) भेंट किया जाता है । शौर्य तथा बलिदान का यह चिन्ह स्पेशल फोर्सिस के जवान बड़े गर्व से अपनी वर्दी पर टाँकते हैं । इस यूनिट के वीर जवान युद्ध के समय शत्रु की सीमा के अन्दर घुसकर उनके महत्त्वपूर्ण ठिकानों को नष्ट करने में विशेष रूप से प्रशिक्षित होते हैं)।

मेरे पति की यह यूनिट वार्षिक सैनिक अभ्यास हेतु पीर पंचाल की उन्हीं पहाड़ियों में जाती थी जहाँ गुज्जर-बकरवाल लोग रहते थे । सेना की हर इकाई वर्ष में एक बार ऐसे अभ्यास अभियान में अवश्य जाती है ताकि युद्ध के समय सैनिक उन भोगोलिक परिस्थितयों में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए पूरी तरह से तैयार हों । ऐसे ही एक अभ्यास शिविर में दूध,फल, दवाई आदि के आदान-प्रदान में पलटन के सैनिकों की पहचान जंगल में बसेरा डाले हुए गुज्जरों के कुटुम्ब से हो गई । एक बार भयंकर तूफान में फंसे इनके परिवारों की सहायता इन सैनिकों ने पूरी जिम्मेवारी से की और इस तरह यह जान-पहचान मित्रता में बदल गई ।

दो मास के अभ्यास शिविर के बाद जब पलटन वापिस अपनी छावनी लौटने के लिए तैयारी कर रही थी तो गुज्जरों के प्रमुख ने भेंट के तौर पर सैनिकों को एक छोटा सा कुत्ते का बच्चा दिया । यूँ भी अपने परिवारों से कई महीने से बिछुड़े सैनिक उस भोले-भाले प्यारे से जानवर से खेलने के मोह से छूट नहीं पाए । पलटन के कुछ सैनिक पहले भी इस नन्ही सी जान से खेल कर दिल बहलाते होंगे और गुज्जरों के मुखिया को शायद इस बात की जानकारी थी । अत: सैनिकों के कप्तान ने सहर्ष यह प्यारी सी भेंट स्वीकार कर ली ।

पहाड़ियाँ उतरते, नदियाँ नाले पार करते हुए इस छोटे से प्राणी ने हमारी पलटन के रजिस्टर में अपना नाम लिखवा लिया । किसने इसका नामकरण किया, कोई नहीं जानता । किन्तु अब वह 'मोती' नाम से जाना जाने लगा । सैनिकों के साथ रहते-रहते मोती पूर्णतय: उनके ही रंग में रंग गया । सैनिक जो खाएँ, वही मोती का आहार, जहाँ सोएँ वही मोती का बसेरा । सुबह ''पी:टी'' का बिगुल बजते ही अपने शरीर को झाड़-पोंछ कर, आँखे मलकर पूँछ हिलाते हुए मोती पी:टी के मैदान में सावधान खड़ा हो जाता था । किसकी क्या हिम्मत कि कोई मोती को कतार से बाहर करे । सुबह की दौड़ में वह पूरी सामर्थ्य के साथ कई सैनिकों को पछाड़ने की होड़ में लगा रहता । फुटबाल, बालीबाल के खेल में वह गेंद पर कड़ी नज़र रखते हुए एक निष्पक्ष रेफ्री के समान कभी इस टीम में और कभी उस टीम के साथ खड़ा हो जाता । इस तरह वो प्यारा सा मोती हमारी पलटन का एक अभिन्न सदस्य हो गया ।

हम कुछ परिवार उन दिनों छावनी में तम्बुओं में रहते थे । इस अस्थाई पहाड़ी छावनी में पक्के मकान बनाने की अनुमति नहीं थी । हर परिवार के लिए एक बड़ा सा तम्बू गाड़ दिया जाता था । दो चारपाइयां,एक स्टील की मेज़,एक आध कुर्सी,तम्बू की अंदरूनी तह में लटका हुआ एक शीशा, रोशनी के लिए लालटेन या गैस लैम्प, आदि-आदि आवश्यकता की पूरी सामग्री । यहाँ मैं अपने पाठकों को अवश्य बताना चाहती हूँ कि यह कोई बहुत पुरानी बात नहीं है, ७० के दशक की बात है और भारतीय सेना की बहुत सारी छावनियों में इसी तरह से रहने का बंदोबस्त था । ऐसी अस्थायी छावनियाँ जंगलों या पहाड़ी क्षेत्र में स्थित थीं । हर बड़े तम्बू के पीछे एक छोटा तम्बू होता था, जो गुसलखाने का बस आभास देता था । किन्तु अब याद करती हूँ तो लगता है वही हमारा स्वर्ग था, वही हमारा संसार ।

अधिकारियों का खाना पीना 'मैस'' में होता था और अन्य सैनिकों का लंगर में । मुझे याद है कि सभी अधिकारियों के छोटे बच्चे अपने माँ बाप के साथ ''मैस'' का खाना खाने के बजाय लंगर में अन्य सैनिकों के साथ ही खाना खाना पसंद करते थे । तो फिर मोती भी कोई कम नहीं था । उसे जहाँ से भी स्वादिष्ट भोजन की सुगंध आती, वो उसी रसोई के इर्द -गिर्द चक्कर काटता रहता । शाम को पलटन के बच्चों के साथ कई तरह के खेल खेलता था । इस तरह वे बच्चों तथा बड़ों का प्रिय मित्र बन गया ।

अगले वर्ष के अभ्यास शिविर में सैनिकों के साथ रहते -रहते मोती पूरी तरह प्रशिक्षित हो गया । सुना है कि वह जंगलों-पहाड़ों में रात के समय आसानी से पगडंडियों के बीच का रास्ता बता सकता था । घने जंगलों में चलते -चलते वह जंगली जानवरों के वहाँ होने का आभास करा देता था । अभ्यास के लिए धरती की परतों में दबाई ''माइन'' को केवल सूंघ कर पहचानने में वो पूरी तरह अभ्यस्त हो गया था । इस तरह वो छोटा सा जानवर आकार से तो नहीं किन्तु अपनी बुद्धि और संकल्प से एक शूरवीर सैनिक की तरह

प्रशिक्षित हो गया । अब पलटन में उसे प्यार से ''कमांडो मोती'' के नाम से पुकारा जाने लगा । या यूँ समझिए कि औरों की तरह मोती की भी पदोन्नति हो गई थी ।

कहते हैं न 'सब दिन होत न एक समान' । विश्वस्त सूत्रों से समाचार आने लगे कि पाकिस्तान बड़े पैमाने पर युद्ध की तैयारी कर रहा था और भारती सीमाओं पर पाकिस्तानी फौज का भारी मात्रा में जमाव बढ़ रहा था । हमारी पलटन में भी सीमा क्षेत्र की ओर प्रस्थान करने की तैयारी धीरे -धीरे शुरू हो गई । मोती पूरी तैयारी में बहुत व्यस्त दिखाई दे रहा था । हथियारों की सफाई, गाड़ियों की मरम्मत, खाने के लिए शक्करपारे, भुने हुए चने से लेकर गोला बारूद की सही पैकिंग भी मानो उसकी निगरानी में हो रही थी।

दिवाली का त्योहार बस कुछ दिन दूर था और वहाँ रहने वाली हम दो चार सैनिक पत्नियों ने बड़े चाव से इसे मनाने की योजना बनाई । किन्तु दीवाली से कुछ दिन पहले ही हमारी पलटन को उत्तरी भारत की सीमा रेखा के पास सीमाओं की चौकसी के लिए भेजने का निर्णय लिया गया । अत: साथ रह कर खुशी से दिवाली मनाने की सारी तैयारियाँ स्थगित कर दी गईं । अब हम लोग अपने आप को आने वाली परिस्थितियों से जूझने के लिए तैयार करने लगे ।

प्रस्थान के दिन सैनिक पत्नियों ने अपने पति और पलटन के अन्य सदस्यों के माथे पर तिलक लगा कर विदा किया और आँख मूँदकर, हाथ जोड़कर प्रभु से उनके सकुशल लौटने की मूक प्रार्थना की । युगों-युगों से यह अलिखित नियम है कि पति को युद्ध क्षेत्र की ओर भेजते समय पत्नी आँख में अश्रु नहीं लाती बल्कि अधरों पर मुस्कराहट रखती है । हाँ हृदय की नमी तो अदृश्य होती है, उसे कोई देख नहीं सकता । लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि विदा लेने वाले और विदा देने वाले की मन: स्थिति लगभग एक जैसी होती है ।

यह तो हुई भावुकता की बात । किन्तु गौरव की बात यह थी कि युद्ध क्षेत्र की ओर जाते समय हमारी पलटन की छावनी का आकाश जयघोष की गूँज से भर गया । भारत माता की जय , हर-हर महादेव, जय भवानी आदि-आदि के जयकारों से वातावरण भावी विजय के उद्घोष से भर गया ।

प्रस्थान के दिन सैनिक पत्नियों ने अपने पति और पलटन के अन्य सदस्यों के माथे पर तिलक लगा कर विदा किया और आँख मूँदकर, हाथ जोड़कर प्रभु से उनके सकुशल लौटने की मूक प्रार्थना की । युगों-युगों से यह अलिखित नियम है कि पति को युद्ध क्षेत्र की ओर भेजते समय पत्नी आँख में अश्रु नहीं लाती बल्कि अधरों पर मुस्कराहट रखती है । हाँ हृदय की नमी तो अदृश्य होती है, उसे कोई देख नहीं सकता । लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि विदा लेने वाले और विदा देने वाले की मन: स्थिति लगभग एक जैसी होती है ।

अब चल पड़ा जीपों, ट्रकों का लंबा काफिला । मोती किस गाड़ी में बैठ कर गया मुझे पता नहीं चला, पर इतना जानती हूँ कि उस प्रशिक्षित कमांडो को कोई भी पीछे छोड़ने को राजी नहीं था ।

जम्मू क्षेत्र में सीमा रेखा के पास पलटन का कैम्प लगा । युद्ध के बादल तो मंडरा ही रहे थे किन्तु पहल किस ओर से होगी कोई नहीं जानता था । एक प्रबुद्ध नागरिक और सैनिक पत्नी होने के नाते हम केवल इतना जानते थे कि सैनिक चाहे किसी भी पदवी पर हो, युद्ध छेड़ने का निर्णय उसका नहीं होता । यह काम देशों की सरकारें करती हैं । सैनिक तो केवल अपने देश के प्रति कर्त्तव्य पालन करता है; जिसके लिए वो शरीर,मन और बुद्धि से सदैव तैयार रहता है ।

नवंबर के अंतिम सप्ताह में सैनिक टुकड़ियों ने सीमा रेखा के बहुत पास मोर्चे संभाल लिए । वे सब अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ धरती के अंदर धंसी हुई बंकरों के अंदर सावधानी के साथ रहने लगे । सीमा रेखा से लगभग सात-आठ मील पीछे एक-एक स्कूल के भवन में पलटन के रसोइए, नाई, धोबी और अन्य लोगों के पास मोती को भी रख दिया गया । था तो वो भी कमांडो लेकिन युद्ध क्षेत्र में उसे ले जाने का कोई भी नियम नहीं था । यह तो बस भावना की, संबंधों की बात थी । पर सुना है कि पलटन के वीरों को सीमा की ओर जाते हुए देख कर मोती बहुत विचलित हो गया था और बार- बार गले में बंधी अपनी रस्सी को खोलने का प्रयत्न करता रहा ।

४ दिसंबर की रात को भारत पाक युद्ध आरम्भ हो गया । आकाश में सेबर जेट और नेट नाम के लड़ाकू विमान युद्धरत थे और धरती पर टैंक, मशीन गन , ग्रनेड आदि अस्त्र-शस्त्रों ने तबाही मचाई हुई थी । अपने-अपने मोर्चे में बैठे हमारी पलटन के योद्धा शत्रु पर घात लगाने के लिए तैयार बैठे थे । आकाश में धूल और बारूद का धुआँ फैला रहता था । उस रात बंकर में बैठे सैनिकों ने देखा कि गोलियों की बरसात से बचता -बचाता मोती अपने साथियों की सुगंध से रास्ता ढूँढता हुआ बंकर के महीन प्रवेश द्वार पर खड़ा था । उसके गले में बंधी टूटी हुई रस्सी यह बता रही थी कि वे सारे बंधन तोड़ कर इस कठिन घड़ी में अपने साथियों के साथ रहना चाहता था । जहाँ उसे देख कर सभी को खुशी हुई वहीं उसकी सुरक्षा की चिंता भी । आखिर यह निर्णय लिया गया कि अगली रात के अन्धेरे में जैसे-तैसे भी उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया जाएगा । मोती को तो बस यह खुशी थी कि इस कठिन समय में भी अपनों के बीच है । इस बात का अहसास वो बारी-बारी सैनिकों के मोर्चों में जाकर करा रहा था । मानो वह उनका हौंसला बढ़ा रहा हो ।

अगले दिन यानी ६ दिसंबर की रात को विश्वस्त सूत्रों से यह सूचना मिली की शत्रु पक्ष की सेना के कुछ घुसपैठिये भारतीय सीमा के अन्दर घुस आये हैं तथा वे एक पहाड़ी के पीछे छिपकर भारतीय सेना पर घात लगाने की तैयारी में हैं । तब सीमा की अग्रिम रेखा पर तैनात कमांडो टुकड़ी को घुसपैठियों को नष्ट करने का आदेश मिला । यह जोखिम का काम था जिसमें दोनों पक्षों में आमने सामने होकर वार करने की संभावना थी । हमारी पलटन के बहादुर जवान ऐसी परिस्थिति के लिए पूर्णतया: प्रशिक्षित थे तथा कई बार ऐसे युद्ध का अभ्यास भी कर चुके थे । उस रात जैसे ही जवानों की टुकड़ी, अपने मोर्चे से निकल कर अँधेरे को ओढ़कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ी । मोर्चे में बैठा मोती भी शायद उनके साथ हो लिया । महाभारत

के वीर अर्जुन के समान उस समय प्रत्येक जवान के सामने अपना लक्ष्य ही था । उनके आस-पास कौन है इस बात से सब बेख़बर थे । घोर अँधेरे में ये वीर जवान भूमि के नीचे दबाई हुई सुरंगों से अपने को बचाते- बचाते लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे । ख़बर थी कि पहाड़ी के ऊपर पेड़ों के झुण्ड में शत्रु छिपा हुआ था । जवानों ने पूरी सतर्कता से पहाड़ी की खोजबीन करनी शुरू की तो मोती भी उनके साथ चुपचाप शत्रु की खोज में लगा रहा । तभी मोती को शायद मनुष्य की गंध आई और वह सूँघता- सूँघता, पहाड़ी के ऊपर पेड़ों के उस झुण्ड में घुस गया, जहाँ घुसपैठिये छिपे बैठे थे । घुसपैठियों ने समझा कि शत्रु का बहुत बड़ा हमला आया है । उन्होंने इस दिशा की तरफ गोलियां चलानी शुरू कर दीं । गोली चलते ही हमारे जवान सतर्क हो गए । किन्तु उनके आगे जाने वाले वीर मोती ने गोलियों की बौछार को अपने शरीर पर झेल लिया । गोली लगते ही सब ने उस अँधेरे में मोती की एक हृदय विदारक चीत्कार सुनी । वो कहाँ था, घोर अँधेरे में पता नहीं चला किन्तु हमारे जवानों को शत्रु के ठिकाने का पता चल गया । उन्होंने जल्दी ही उनके ठिकाने को घेर लिया । कुछ देर घमासान गोलाबारी हुई । इस हमले में हमारे सैनिकों ने छिपे हुए सभी घुसपैठियों को मार गिराया । अपने लक्ष्य की सफलता के बाद जब उस स्थान की तलाशी की गयी तो उन्होंने वहाँ मोती को घायल पड़ा हुआ देखा । सैनिकों द्वारा मरहम पट्टी करते- करते ही उसके प्राण पखेरू उड़ गए । उस रात के भयंकर युद्ध में वो स्वयं तो शहीद हो गया किन्तु शत्रु घुसपैठियों की घात के इरादे नष्ट-भ्रष्ट हो गए । उसके मृत शरीर को देख कर सभी सैनिक नत मस्तक हो खड़े रह गए । युद्ध के समय भावना से कर्त्तव्य ऊँचा होता है । भावुक होने के बजाय सैनिकों ने मोती के शरीर को सीमा के पास युद्ध भूमि में दबा दिया ।

युद्ध चलता रहा, सैनिक भारत माँ की रक्षा में अपने संकल्प पर डटे रहे । सत्रह दिन के भयंकर युद्ध में कितनी जाने गईं, कितनी माताओं ने अपने बेटे खोए, कितने सुहाग उजड़े, कितनी संताने अपने पिता के स्नेहाश्रय से वंचित रह गईं, कितने बूढ़े माता-पिता ने अपने बुढ़ापे का सहारा खो दिया । किसी के पास इसका लेखा-जोखा नहीं था । कुछ दिन अख़बारों की सुर्ख़ियों में नाम आते रहे, वीरता के गीत बजते रहे, भावनाएँ देश की सुरक्षा की ओर केन्द्रीभूत होती रहीं । संसार के महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में विश्व में युद्ध को रोकने के प्रस्ताव पारित होते रहे । इस बीच हम सैनिक पत्नियाँ केवल अपनी पलटन और अन्य भारतीय सेना की पलटनों के सुरक्षित लौटने की प्रार्थना करती रहीं ।

सत्रह दिनों के बाद युद्ध की समाप्ति हुई । अपने शिविर में लौटने से पहले सैनिकों ने मोती के दबाये जाने की जगह पर एक छोटी सी समाधि बनाई तथा पूरे सैनिक सम्मान के साथ केवल हाथ से नहीं हृदय से भी उस शहीद को सलामी दी । सारी पलटन को यही लग रहा था कि उनके परिवार का एक अभिन्न सदस्य दूर, कहीं दूर चला गया हो । वापिस आकर कई दिन तक मोती के बलिदान तथा वीरता की चर्चा हमारी पलटन का हिस्सा बन गई ।

इस युद्ध को हुए कई बरस हो गये हैं लेकिन उस समय के सैनिक परिवार जब भी आपस में मिलते हैं तो मोती के बलिदान को अवश्य याद करते हैं । उसने इस पलटन का ''बलिदान'' चिह्न (बैज) अपने शरीर पर तो कभी नहीं टांका किन्तु वो उसके अर्थ को चरितार्थ कर गया । मनुष्य तथा पशु के परस्पर संबंधों की यह अनुपम गाथा हम सैनिक परिवारों के लिए चिर स्मरणीय रहेगी ।

shashipadha@gmail.com

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

संस्मरण

साहित्यकारों के कुछ रोचक संस्मरण

जगदीश किंजल्क

साहित्यकारों की दिनचर्या में प्राय: ऐसा कुछ घटित होता रहता है जो आगे चल कर ऐतिहासिक महत्त्व का हो जाता है । कुछ बातें संस्मरण बन जाती हैं और कुछ प्रेरणादायी सूक्तियाँ । बातें इतनी सहज रूप में निकल पड़ती हैं, जिनकी कोई कल्पना नहीं कर सकता । साहित्यकार स्वयं चाहे कि वे अपने संस्मरण बनाये तो शायद ऐसा कर पाना मुश्किल होगा । पर कभी-कभी सहज में ही संस्मरण बन जाते हैं ।

पंडित जवाहर लाल नेहरू जितने बड़े राजनेता रहे हैं उतने ही बड़े साहित्यकार भी । उनका एक रोचक संस्मरण है । बात उस ज़माने की है जब भारत के नक्शे में विन्ध्य प्रदेश नाम का राज्य था । राजधानी रीवा में थी । उन्हीं दिनों राजर्षि पुरुषोत्मदास टंडन खजुराहो आये । तत्कालीन मंत्री श्री महेन्द्र कुमार मानव ने राजर्षि का स्वागत किया । राजर्षि खजुराहो की नग्न मूर्तियों को देखकर बहुत नाराज़ हुए और मानव जी से बोले ,'यह क्या अश्लील प्रदर्शन करवा रहे हो । इन मन्दिरों पर सीमेंट का लेप करा दो ।' राजर्षि की क्रोध भरी मुद्रा देखकर मानव जी खामोश रहे । राजर्षि के समक्ष उनकी बात काटने अथवा बहस लड़ाने की उनमें हिम्मत न थी । मानव जी चुपचाप रह गये और राजर्षि को बिदाई दी । कुछ दिनों बाद प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु खजुराहो आये । उन्होंने खजुराहो देखा तो उनका मन प्रमुदित हो गया । मन्दिरों की प्रशंसा में बहुत कुछ बोलते रहे । इस बार भी मानव जी वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने पंडित जी को बताया कि पिछले दिनों राजर्षि यहाँ आये थे और इन अश्लील मूर्तियों को देखकर बहुत बिगड़ रहे थे । वे कह गये हैं कि इन पर सीमेंट का लेप करा दो । बात सुनकर नेहरू जी पहले तो मुस्कराए फिर क्रोध प्रकट करते हुए बोले,'मानव ! उनकी गलती नहीं है । गलती तुम्हारी है । तुम राजर्षि को इस रंगशाला में लाये ही क्यों ? एक राजर्षि से तुम और क्या अपेक्षा रख सकते हो ? नेहरू जी की बात सुन कर भी मानव जी खामोश रह गये । फिर साहस बटोर कर बोले, 'ठीक है पंडित जी । राजर्षि ने भी डाँटा था, अब पंडित जी भी डाँट लें ।' इतना सुनकर नेहरू जी अपनी हँसी न रोक पाए । मानव जी समझ गये कि किसी ऋषि को यहाँ नहीं लाना चाहिए भले ही राजर्षि क्यों ना हों ।

पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी उन दिनों शान्ति निकेतन में रहा करते थे । उनके पास एक कार थी । वे कार को बहुत धीरे-धीरे, आहिस्ता आहिस्ता ड्राइव करते थे । उनकी कार की गति को देखकर बैठने वाले की भी तबियत ऊब जाया करती थी, पर द्विवेदी जी हैं कि अपने मेहमानों को कार पर ही ले जाया करते थे । एक बार यशपाल जैन शान्ति निकेतन पहुँचे । दो तीन दिन रहने के पश्चात जब वे वापस आने को थे तो उन्होंने देखा कि गाड़ी छूटने में कुछ ही देर का समय बाकी बचा है । वे जल्दी-जल्दी स्टेशन की ओर बढ़ने की तैयारी करने लगे । तभी द्विवेदी जी ने उन्हें पकड़ लिया और बोले,'ठहरो ठहरो यशपाल तुम्हारी गाड़ी छूटने में बहुत कम समय बचा है । चलो मैं तुम्हें गाड़ी से छोड़ देता हूँ स्टेशन तक ।' यशपाल जी पर मानो घड़ों पानी पड़ गया । अपने आदरणीय मित्र का आग्रह कैसे टालें ! गाड़ी में बैठ जाने का मतलब होता गाड़ी का निश्चय ही छूट जाना । यशपाल जी ने बड़ा साहस जुटाया और मुस्कराते हुए बोले,'नहीं-नहीं पंडित जी । आप बिलकुल कष्ट न करें । मेरा आज दिल्ली पहुँचना हर हालत में ज़रूरी है । स्टेशन तक पैदल ही चला जाता हूँ । '

पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने अपनी ज़िन्दगी का बहुमूल्य समय कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) म.प्रदेश में बिताया है । उन दिनों वहाँ साहित्यकारों का अच्छा जमघट हुआ करता था और आये दिन साहित्यिक गोष्ठियाँ चलती रहती थीं । इतना अच्छा माहौल बना हुआ था कि लोग कुण्डेश्वर को साहित्यिक तीर्थ कहने लगे थे । पंडित बनारसीदास जी प्रतिदिन अपने बालों में चमेली का तेल मला करते थे । यह बात सभी साहित्यकारों को मालूम थी । अपने मेहमानों को भी चतुर्वेदी जी चमेली का तेल लगाने को दिया करते थे । एक दिन एक ऐतिहासिक चर्चा चल रही थी । काका कृष्णानन्द और अम्बिका प्रसाद दिव्य भी वहाँ मौजूद थे । गम्भीर साहित्यिक चर्चाओं के दौरान अनायास एक कुत्ता भौंकने लगा । लोगों ने बहुत दुत्कारा पर उसका न तो भौंकना बंद हुआ और न ही वह वहाँ से भागा । पंडित जी की भृकुटी क्रोध के कारण टेढ़ी हो गयी । इसके पहले वे कुछ कहते , काका ने गम्भीरता से कहा, 'अरे नहीं मानता तो इसके सर पर चमेली का तेल मल दो ।' इतना सुनते ही सभी साहित्यकारों ने इतना ज़ोर का ठहाका लगाया कि कुत्ता वहाँ से भाग खड़ा हुआ । तभी अम्बिका प्रसाद दिव्य ने चुटकी ली, 'पता नहीं कुत्ता चमेली के तेल की मालिश के डर से भागा है या ठहाकों से डर गया है ।' पंडित जी शर्म से पानी-पानी हो गये ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेखकीय व्यक्तित्व जितना गम्भीर था उतना ही विनोदप्रिय भी । वे कभी-कभी चुटकियाँ लिया करते थे । द्विवेदी जी बलिया के रहने वाले थे और मैथिली शरण गुप्त जी चिरगाँव के । एक बार दोनों महापुरुष मिल बैठे और इधर-उधर की गप्पें होने लगीं । गुप्त जी ने चुटकी लेते हुए गम्भीरता से कहा, द्विवेदी जी ! अब तो ऐसा प्रतीत होने लगा है कि बलिया के लोग कुछ-कुछ चतुर होने लगे हैं'। द्विवेदी जी राष्ट्रकवि का व्यंग्य समझ गये । उन्हों ने भी बड़ी गम्भीरता और शालीनता से नहले पर दहला मारा , 'चतुर हों न हो, पर यह निश्चित है कि वहाँ के लोग चिर गँवार नहीं होते ।' और थोड़ी देर बाद दोनों दिग्गज ठहाका लगा कर हँस पड़े ।

एक बार मैं पिता जी श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य के साथ डॉ. रामकुमार वर्मा से मिलने इलाहाबाद गया । जनवरी १९८१ का महीना था । पिता जी ने अपना नाम बताया था तो उन्होंने बड़ी आत्मीयता से हाथ मिलाकर अभिवादन किया, क्योंकि वे पुराने परिचित थे और वर्षों बाद मिले थे । पिता जी ने बताया, 'ये जगदीश किंजल्क है ।' वर्मा जी ने मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया और बोले,'भाई आपका नाम तो बहुत सुना है'। इसके पहले कि मैं कुछ सोचता समझता, मैंने भी अपना हाथ बढ़ा दिया ।

हाथ मिलाकर हम सभी लोग बैठ गये और गप्पे करने लगे। वर्मा जी, पिता जी के ऐतिहासिक उपन्यास देखते रहे । फिर, बुन्देलखंड चित्रावली पर सम्मति लिखने लगे । मैं बीच-बीच में पिता जी की पुस्तकों की चर्चा कर देता था । वर्मा जी ने आश्चर्य से पूछा,'आप दिव्य जी के बारे में क्या सब कुछ जानते हैं'? इसके पूर्व मैं कुछ कहता, पिता जी बोल पड़े, - 'वर्मा जी यह मेरा बेटा है।' इतना सुनना था कि वर्मा जी एकदम तुनककर मुझसे बोले,'तो किंजल्क, तुमने मुझसे हाथ क्यों मिलाया । तुम्हें तो मेरे पैर छूना चाहिए। मैं शर्म से पानी-पानी हो गया । सच भी था, मुझे पैर छूना चाहिए था, पर वर्मा जी ने आरम्भ में इतना मौक़ा ही नहीं दिया था । मैं उठा, और मैंने उनके पैर छू लिए । वर्मा जी ने मुझे हँसते हुए गले लगा लिया । तभी मैंने उनसे कहा ,'दादा जी ! मैं आपके पैर ही छूने यहाँ तक आया हूँ। चूँकि आपने अपना हाथ बढ़ा दिया था, तो मैं आपका अपमान कैसे करता । यह मेरे लिए ऐतिहासिक महत्त्व की घटना हो गयी। मैं सभी से कहूँगा कि मुझे डॉ.रामकुमार वर्मा जी से हाथ मिलाने का अवसर मिला है । वर्मा जी का स्नेह और विनम्रता देखकर मैं हतप्रभ रह गया ।

jagdishkinjalk@gmail.com

अविस्मरणीय

महाकवि जयशंकर प्रसाद

महाकवि जयशंकर प्रसाद

(जन्म-30 जनवरी 1889 वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रयाण- 15 नवम्बर 1937) हिन्दी नाट्य जगत और कथा साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। कामायनी महाकाव्य उनकी अक्षय कीर्ति का स्तम्भ है ।

प्रयाण -गीत

हिमाद्रि तुंग शृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला,
स्वतंत्रता पुकारती।
अमर्त्य वीर पुत्र हो,
दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ हैं -
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के,
रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिंधु में,
सुबाड़वाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो,
बढ़े चलो बढ़े चलो।

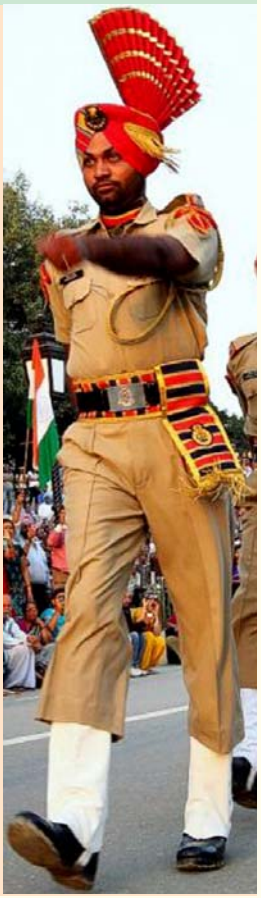

विश्वविद्यालय के प्रांगण से

निकोलस पोलाज़ेक

मैं हिन्दी क्यों पढ़ता हूँ.....

बहुत लोग नहीं मानते हैं कि मैं हिन्दी पढ़ रहा हूँ । सवाल पूछते हैं ...

''तुम भारतीय पढ़ रहे हो?''

''गोरा लड़का हिन्दी कक्षा में क्यों है?''

''अंग्रेज़ी कक्षा में क्यों नहीं है?''

सबसे पहले मैं आपको बताना चाहता हूँ कि यह हिन्दी कक्षा है, भारतीय कक्षा नहीं। दूसरे, आपकी बात मुझको बुरी लगी। मैं हिन्दी क्यों नहीं सीख सकता। मैं विदेशी कंपनी में काम करूँगा। भारत एक बड़ी अर्थ-व्यवस्था है । मैं भारत जाऊँगा, भारत-भ्रमण करूँगा और सबकी बातचीत समझूँगा। मैं यही चाहता हूँ। हो सकता है, मैं बड़ी बॉलीवुड फिल्म में नाचना चाहूँ या मैं गाने सुनना चाहूँ ; दिलचस्प कहानियाँ पढ़ना चाहूँ या सुन्दर कविताएँ समझना चाहूँ । बहुत सारे कारण हैं, लेकिन मेरा एक कारण गहन है। मैं मेरे पड़ोसी के कारण भी हिन्दी सीख रहा हूँ। रुको, मैं मुस्कुराऊँगा और मेरे साथ आप भी मुस्कुराएँगे। मेरे माता-पिता बहुत काम कर रहे थे। स्कूल के बाद, मैं अपने पड़ोसी के साथ रहता था। भले ही मैं ''ब्राउन'' नहीं हूँ, मैं उनका बेटा होता था। संस्कृति, परंपरा और रंग कुछ नहीं होते। आज वे मेरे दूसरे परिवार के समान हैं। साथ-साथ हम खाना साझा करते हैं और छुट्टियाँ मनाते हैं। उनका घर मेरा घर है। मैं हिन्दी सीख रहा हूँ ताकि उन्हें गर्व हो मुझ पर। संक्षिप्त में, मैं मेरी दुनिया बढ़ाना चाहता हूँ ताकि एक दिन यह भेदभाव दूर हो जाए। नमस्ते।

Nicholas Polaczek
University of Toronto
Mississauga Student

समकालीन साहित्य में स्त्री- विमर्श

मो. आसिफ खान

क्या है स्त्री - विमर्श ? नारी पर चिन्तन कभी थमता क्यों नहीं ? समाज का वह कौन - सा सत्य है जो नारी को सदैव सुर्ख़ियों में रखता है ? कल भी और आज भी । नारी एक ओर जगज्जननी के रूप में दिखाई देती है तो दूसरी ओर रति स्वरूपा । जगज्जननी और रति का संघर्ष आज का नहीं है । यह तो सदियों पुराना है । लेकिन कल और आज में एक बृहत् अंतर दिखाई देता है ।

नारीवाद से जुदा स्त्री - विमर्श साहित्य सम्बन्धी विमर्श माना जाता है । पश्चिमी आलोचना क्षेत्र में बीसवीं शताब्दी के मध्य के पश्चात ही स्त्री-विमर्श को पर्याप्त स्थान मिला था । पर यह बात कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हिन्दी का स्त्री - विमर्श पश्चिम की नकल मात्र नहीं है । वात्स्यायन के कामसूत्र, बौद्धकालीन थेरीगाथा, मध्यकालीन सूरदास, मीरा इत्यादि से होकर आज तक स्त्री-विमर्श का एक लम्बा इतिहास भारतवर्ष में है । नवोत्थान काल में राजा राम मोहन राय, विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती इत्यादि के प्रोत्साहन तथा प्रेरणा से नारी-मुक्ति एवं उसके अधिकारों के प्रति सजगता लाने के उपक्रम हुए । इस दृष्टि से विभिन्न स्त्री संगठनों की स्थापना तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन समानांतर चले । भारतेंदु ने स्त्री शिक्षा के लिए बालबोधिनी शीर्षक पत्रिका का सम्पादन किया था । हिन्दी साहित्य में नारी अधिकारों को वाणी देने वाली सर्वप्रथम महिला होने का श्रेय बंग महिला को जाता है । इस शृंखला में बंग महिला तथा मीरा की अगली कड़ी के रूप में महादेवी वर्मा आती हैं । महादेवी वर्मा ने तीस के दशक में शृंखला की कड़ियाँ में नारी अधिकार एवं नारी मुक्ति की आवाज़ उठाई थी , वह स्त्री - विमर्श को पश्चिम की नकल मात्र मानने वाले के तर्क को निराधार सिद्ध करती हैं । इस बात को स्वीकृति देते हुए प्रख्यात आलोचक प्रो. मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि ऐसा लगता है कि नारीवादी और अन्य लेखिकाएँ भी 'शृंखला की कड़ियाँ' के महत्त्व से पूरी तरह परिचित नहीं हैं । वे सिमोन द बोउआर की किताब पढ़ती हैं, लेकिन महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियाँ' नहीं क्योंकि वह हिन्दी में लिखी गयी है, फ्रेंच या अंग्रेज़ी में नहीं ।

जब नारी सात तालों में बंद की गयी और उसके बाद जब उसके ताले खुलने शुरू हुए तभी से नारी को भी पुरुष की तरह शोहरत पाने की ललक लग गयी । शोहरत के मार्ग में तो कांटे हैं । पुरुष भी इन काँटों से होकर गुज़रता है और जब नारी ने यह मार्ग चुना तब उसके लिए भी काँटे बिछाए गए । शोहरत के मार्ग दो होते हैं, एक मार्ग बहुत लम्बा है और दूसरा मार्ग बहुत सरल । इस दूसरे मार्ग पर पुरुष ने नारी के लिए काँटे बिछाए हैं और जब भी कोई नारी इस सरल मार्ग को अपनाती है तब मार्ग में बिछी नागफनियाँ उसके आँचल को तार - तार कर देती हैं । सूक्ष्म काँटे ओढ़नी में ऐसे धँस जाते हैं कि ओढ़नी शरीर से त्यागनी ही पड़ती है । तब नारी को लगता है कि मैं छली गयी । उसे नियति तभी लम्बा मार्ग दिखाती है और कहती है कि यदि तुमने यह लम्बा मार्ग चुना होता तो पाँव में बिवाई तो फट सकती थी लेकिन दामन सही-सलामत रहता । शोहरत और सफलता तो कर्मों की दासी है, कर्म करते रहिए, शोहरत और सफलता स्वत: ही दबे पाँव आपके दाएँ-बाएँ खड़ी दिखाई देगी । इस शोहरत के छोटे मार्ग ने भी स्त्री-विमर्श को जन्म दिया ।

भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने इस स्त्रीवादी मुद्दे को और अधिक जटिल बना दिया है । आज भौतिकता की इस अंधी दौड़ में सब कुछ बिकने को है- स्त्री सौन्दर्य भी । आज के बौद्धिक समाज में नारी - विमर्श और दलित - विमर्श बहस और लेखन के केन्द्रीय मुद्दे बने हुए हैं । इन विषयों पर लगातार रचनाएँ रची जा रही हैं । गम्भीर प्रश्न अब बना हुआ है कि दलित लेखन उसे ही माना जा रहा है जिसे दलितों ने लिखा हो । ठीक इसी प्रकार के हालात स्त्री-विमर्श के साथ हो रहा है ।

आज भी स्त्री-विमर्श के द्वारा नारी पर हुए अत्याचार और उसकी स्वतन्त्रता के लिए उसकी स्थिति को दर्शाया गया है । लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में बैताल के प्रश्न की तरह निकल आता है कि नारी की पीड़ा जो आज उसने स्वयं ने भोगी है उस पीड़ा को पुरुष कैसे लिख सकता है ? जिसने जो अनुभव किया ही नहीं वह क्या जाने पीर पराई । आप जितने भी नारे देखेंगे वह पुरुष की सत्ता को दर्शाते हैं, जैसे पुरुष प्रधान समाज, नारी अबला है, आदि आदि । जबकि पुरातन काल में पितृ-सत्तात्मक या मातृ सत्तात्मक परिवार होते थे और नारी महिषासुर-मर्दिनी के रूप में प्रतिष्ठित थी । आज नारी भी स्वयं को अबला मानने पर उतारू है । वह इस बात से भी अनभिज्ञ है कि उसने पुरुष को जन्म दिया है और उसके अन्दर बुद्धि और बल का संचारण उसने ही किया है ।

छठे दशक में कई महिला-रचनाकारों के पदार्पण से स्त्री लेखन में नया उभार आया । मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, ऊषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुदगल, सुधा अरोड़ा, सूर्यबाला, अर्चना वर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, नासिर शर्मा, अलका सरावगी जैसी महिला लेखिकाओं की एक कतार ने स्त्री-अधिकार और मुक्ति के प्रसंग को बड़ी शिद्दत से अभिव्यक्ति दी ।

मैत्रेयी पुष्पा ने एक साक्षात्कार में कहा था कि आजकल स्त्री-विमर्श को लेकर कुछ लोग झुनझुना बजाते हैं तो कुछ लोग स्त्रियों का मामला बताकर उनके सवालों को टालने की कोशिश करते हैं । आज स्त्री-विमर्श की ज़रूरत है । मुझसे लोग कहते हैं कि तुम्हारे लेखन में वैसा स्त्री-विमर्श कहाँ है जैसा प्रेमचन्द के गोदान में धनिया की भूमिका में है । लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हूँ । मेरी राय में धनिया की भूमिका में स्त्री-विमर्श की

परतें नहीं खुलती हैं । मैं मानती हूँ कि गोदान की धनिया बहुत वेबाकी से बोलती है, लड़ती है, लेकिन वह सब किसके लिए करती है ,अपने पति के लिए करती है, बेटे के हक के लिए करती है । अपने लिए या अपनी बेटी सोना के हक के लिए नहीं करती है । धनिया सोना को बिकने देती है । आज अगर कल की लिखी गोदान को लें या चित्रलेखा, आधा गाँव और त्याग पत्र को लें तो इनमें भी स्त्री विमर्श नहीं है । स्त्री-विमर्श का मतलव है स्त्री स्वयं अपने बारे में सोचे । आज के परिवार वहीं बिखर रहे हैं जहाँ धुरी के रूप में स्त्रियाँ कमज़ोर हैं । मुझे प्रेमचन्द के रंगभूमि उपन्यास में स्त्री-विमर्श के तत्त्व दीखते हैं जो सूरदास के पास जाती है ।

मैत्रेयी पुष्पा का स्त्री-विमर्श अपने लेखन में प्रतिरोधी चेतना की मुखर अभिव्यक्ति के द्वारा स्वतंत्र नारी की अस्मिता और उसके सशक्तीकरण का एक ठोस धरातल खड़ा करता है । उनके चर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका मन्दाकिनी और अन्य सत्तात्मक सामंती ढाँचा है जो नारी के सभी अधिकारों को तहस-नहस करना चाहता है ।'गोमा हँसती है','राय प्रवीण' आदि कहानियाँ और'चाक' उपन्यास में नारी अधिकार और स्वत्वबोध सम्बन्धी प्रश्न उठाये गये हैं ।

कृष्णा सोबती की 'सूरजमुखी अँधेरे के' और 'मित्रो मरजानी ' ऐसी औपन्यासिक कृतियाँ हैं जो सेक्स सम्बन्धी गोपनीय अंशों को बिना किसी संकोच के बेवाक जबान में उजागर करके पाठकों को चौंका देती है । ऊषा प्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका', मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा', नासिरा शर्मा के 'शाल्मली', प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' जैसे उपन्यासों ने नारी अस्मिता और स्वत्वबोध को आगे बढ़ाया। ममता कालिया का 'बेघर' सेक्स सम्बन्धी रूढ़मिथक को तोड़ता है ।

चित्रा मुदगल स्त्री स्वत्वबोध और स्त्री-विमर्श से जुड़ी प्रसिद्ध लेखिका हैं ।'एक ज़मीन अपनी', 'आँवा' जैसे उपन्यासों में नारी मुक्ति, नारी की दशा-दिशा और छवि आदि बहुत से मुद्दों पर विचार विमर्श करते हुए उन्होंने बहुत से प्रश्न उठाये हैं ।

नारी सृजन, मातृत्व और संस्कृति का प्रतीक है । उसे रसोई और परिवार से बाहर निकाल कर खेल, राजनीति, प्रशासन की ऊँचाइयों में हमने रख दिया है और नारी सारी मान्यताएँ तोड़कर पुरुष

भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में शुद्धि, पवित्रता आदि भाव सामाजिक, राजनैतिक भूलों में से एक है, इन्हीं भूलों ने उसे दासी बनाया या फिर देवी । वह मनुष्य कहीं नहीं है । उसे मनुष्य मानने के आग्रह में ही स्त्री चेतना अंकुरित हुई । स्त्री का मानवी के रूप में प्रतिष्ठित होने के प्रयास ही नारी चेतना की उत्प्रेरक शक्ति है ।

होना चाहती है । वर्चस्व के लिए नारी बढ़ रही है । बराबरी की बात है, चाहे साहित्य में, कहानी और उपन्यास में, नारी को पुरुष बना दे आप, पर प्रकृति के साथ नारी को जोड़कर देखने से बहुत से नये सवाल खड़े करेंगे । क्या परिवर्तन के साथ नारी वर्तमान समय में चाहती है कि जैसे अत्याचार पूर्व में पुरुष ने नारी पर किया । क्या वैसा अत्याचार नारी पुरुष के साथ करना चाहती है । प्रकृति के खिलाफ चलने के बजाय प्रकृति से जुड़कर साहित्य में नारी की स्थिति में परिवर्तन लाने की ज़रूरत है । संस्कार से जुड़कर परिवर्तन लाया जाए और साहित्य, फिल्म और अपने विचारों में नारी से जुड़ी सोच को बदला जाए । नारी के कपड़े कम करने के विचारों को भी आज कम करने की ज़रूरत है । नारी को सृजन, सम्मान और संस्कृति का प्रतीक ही साहित्य में समझा जाए, इस बात की ज़रूरत है । नारी को प्रशासक, राजनेत्री, खिलाड़ी बनाने के साथ परी और रानी के पुराने स्वरूप से जोड़े रखा जाए । नारी को विश्व में और समाज में शक्ति का पर्याय माना जाए ।'नारी को शक्ति' मानना ही सबसे ठीक माना जाएगा।

भारतीय स्त्री के सम्बन्ध में शुद्धि, पवित्रता आदि भाव सामाजिक, राजनैतिक भूलों में से एक है, इन्हीं भूलों ने उसे दासी बनाया या फिर देवी । वह मनुष्य कहीं नहीं है । उसे मनुष्य मानने के आग्रह में ही स्त्री चेतना अंकुरित हुई । स्त्री का मानवी के रूप में प्रतिष्ठित होने के प्रयास ही नारी चेतना की उत्प्रेरक शक्ति है । नारी मुक्ति का अर्थ अतिवादिता के चलते नैतिक मूल्यों से भोगवादी मूल्यों की ओर बढ़ना ही माना गया पर वास्तविक मुक्ति नारी की मानसिक मुक्ति या अपराध बोध से मुक्ति ही है, जब तक यह हासिल नहीं होगी, नारी की स्वतन्त्रता व्यर्थ है । नासिरा शर्मा के उपन्यास स्त्री वस्तु से व्यक्ति में स्थानान्तरण की संघर्षमय प्रक्रिया की गाथाएँ है।'सात नदियाँ एक समन्दर', 'ज़िंदा मुहावरे','ठीकरे की मँगनी','अक्षयवट', 'शाल्मली'आदि उपन्यासों में'शाल्मली' नारी संघर्ष के निर्णय को प्रमुख करती है ।

भारतीय समाज में नारी उच्च शिक्षा प्राप्तकर प्रशासन के सर्वोच्च पदों पर कार्यरत है। असाधारण प्रतिभावना स्त्रियों ने प्रशासनिक सेवाओं में भी अपनी कार्यकुशलता का कीर्तिमान स्थापित किया है पर उनका पारिवारिक जीवन पारम्परिक विषमताओं की शिकार है । नासिरा शर्मा के उपन्यास 'शाल्मली' में एक उच्च पदस्थ अफसर के दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव की कथा को प्रस्तुत किया गया है।'शाल्मली' की शामली के जीवन में केन्द्रीय सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षा में उत्तीर्णता और उच्च पद पर नियुक्ति के साथ ही वैवाहिक जीवन में कटुता की शुरुआत होती है। पति नरेश भी उच्च अधिकारी है पर पत्नी के प्रति ईर्ष्या का भाव बढ़ता जाता है, परोक्ष रूप में अपनी श्रेष्ठता की भावना को पत्नी पर आरोपित करने का प्रयास करता है आपसी प्रेम, ईर्ष्या, स्पर्धा और प्रतिकार में परिवर्तित होकर यातना का रूप ले लेते हैं । नरेश शाल्मली की उपेक्षा करता है, दुर्व्यवहार भी करता है, पर शाल्मली बहुत ही साहसपूर्वक धीरज के साथ इन सभी का सामना करती है। बुद्धिमानी से अपने मौन संघर्ष का परिचय देती है, वह स्थिति से पलायन नहीं करती, अपितु पूरे मनोबल के साथ पति को अपने स्वतंत्र किन्तु सार्थक व्यक्तित्व का आभास कराती है ।

शाल्मली अपने आचरण से सिद्ध करती है कि कोई भी पति नामधारी पुरुष पत्नी के साथ अकारण दुर्व्यवहार करने का बहाना न ढूँढ सके । सहेली द्वारा पति से सम्बन्ध विच्छेद की सलाह दिए जाने पर भी शाल्मली अपनी समस्या का समाधान तलाक में नहीं मानती । वह सहकर्मी सरोज से कहती है - औरतों के पास दो ही अभिव्यक्तियाँ हैं, सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़कर सर कटा लेना । मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर न तोड़ने पर, न आत्महत्या है न अपने को किसी के लिए स्वाहा

करने में है, मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना करती हूँ और विश्वास भी । अधिकार पाना यानी घर निकाला नहीं और घर बना रहने का अर्थ सम्मान को कुचल फेंकना नहीं है। यह जो हमारे मस्तिष्क में अति का भूत सवार हो गया है, वह जीवन के लिए विष समान है । शाल्मली इस नतीजे पर पहुँचती है - जीवन के इन ग्यारह वर्षों के संताप को वह जीवन को महत्त्वपूर्ण मुद्दा न बनाकर उसकी तरफ से निर्लिप्त हो जाय, इसी में उसकी भलाई है, वरना जिस व्यक्तित्व को उसने इतना संभाल कर रखा है, उसे अनजाने में तोड़ बैठेगी और उसकी जीवन यात्रा टूट-टूटकर शाखाओं में बँटने लगेगी और उसका ठोस व्यक्तित्व एक चंचल धारा की तरह अपना सीधा लक्ष्यपूर्ण प्रवाह खो बैठेगा । इस तरह शाल्मली का संघर्ष आजीवन जारी रहना है । लक्ष्य की ओर बढ़ना, शोषण के लिए तैयार तत्त्वों की उपेक्षा ही नारी को मंज़िल तक पहुँचा सकता है ।

स्त्री-विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह स्त्री की मुक्ति की कामना, बराबरी, सामाजिक न्याय, स्वत्वबोध एवं अस्मिता का ही स्वर है। स्त्री-विमर्श यह मानकर चलता है कि स्त्री-अधिकार एवं स्वत्वबोध के विपक्ष में खड़े होने के लिए ज़िम्मेदार पुरुष नहीं है, अपितु पितृसत्तात्मक सिद्धांतों पर आधारित वह व्यवस्था है । इसलिए मशहूर महिला रचनाकार अनामिका कहती है - स्त्री-आन्दोलन पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से पुरुष की क्रमिक मुक्ति को असंम्भव नही मानता, दोषी पुरुष नहीं, यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर हैं, उनके भोग का साधन मात्र । आन्दोलन की सार्थकता इसमें है कि वहाँ उँगली रखें जहाँ-जहाँ मानदण्ड दोहरे हैं, विरूपण, प्रक्षेपण, विलोपन।

नारीवादी आन्दोलन से उभर आया स्त्री-विमर्श समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के परिप्रेक्ष्य में एक नया आयाम ग्रहण कर चुका है । स्त्री के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक हालात से जुड़े सवाल इस विमर्श के मूल में हैं ।

asifkhanamu@gmail.com

भाषांतर

अनुवाद:अर्जुन निराला

नेपाली कवि जय राई छांछा की दो कविताएँ

परिचय: नेपाली के हस्ताक्षर कवि और लेखक जय राई छांछा का जन्म 15 अप्रैल 1951 को बस्तिम-8, भोजपुर, कोसी में हुआ। उन्होंने शुरुआती पढ़ाई और उच्च शिक्षा नेपाल में ही हासिल की। उनकी अब तक चार कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें पोटोमास के किनारे और छांछा की प्रेम कविताएँ काफी सराही गईं । इसके अलावा उन्होंने कई यात्रा-संस्मरण भी लिखे हैं। साहित्य में उनके योगदान को देखते हुए उन्हें दुनिया के कई देशों में सम्मानित किया जा चुका है। उनमें प्रमुख हैं अमर सिंह पोयेट्री प्राइज नेपाल, स्रष्टा प्राइज सिक्किम(भारत), एडिटर च्वाइस अवार्ड (यू.एस.ए.), सागर लिट्रेरी ऑनर (नेपाल), अमेरिका नेपाल सोसाइटी द्वारा सम्मानित (वाशिंगटन डीसी)। उनकी एक और कविता संग्रह इंडिया डायरी जल्द ही प्रकाशित होने वाली है जिसकी कविताएँ उन्होंने भारत प्रवास के दौरान लिखी है। नेपाल विदेश सेवा में कार्यरत छांछा इन दिनों दोहा में सेकिंड सेक्रेटरी के पद पर तैनात हैं।

प्रेम का आकार

तुम्हारे साथ ही बैठा / तुम्हारे साथ ही उठा
तुम्हारे संग ही चला / तुम्हारे संग ही खेला
निकट का तुम्हारा प्रेम
एकदम तिल के आकार जैसा लगा ।

तुम्हें गाँव में ही छोड़ कर / शहर आया मैं
गाँव जितना ही लगा तुम्हारा प्रेम
स्वदेश छोड़ / विदेश पहुँचा
देश जितना ही लगा तुम्हारा प्रेम
भू-तल छोड़ / चाँद पर पहुँचा
पृथ्वी जितना ही लगा तुम्हारा प्रेम ।

अहा! कितना मीठा भ्रम !
या कोई बता सकता है
कैसा होता है
प्रेम का आकार ?

दीवार पर टँगी तुम्हारी तस्वीर

दीवार पर टँगी तुम्हारी तस्वीर
फूल जैसी, साधु जैसी
सच, नाराज़ न होने वाली / न चुभने वाली
आनंद के क्षण जैसी
मोहनी की खान जैसी
दीवार पर टँगी तुम्हारी तस्वीर ।

कोयल की कुहू -कुहू जैसी
सुनने में मधुर तुम्हारी बोली
टेपरिकार्ड बजाते बार-बार सुनता हूँ
यादों को ताज़ा करता हूँ
विरह को धाता हूँ
नाराज़ मत होना ऐ मेरी प्रिय !
बचत खाता खोलकर भी
जुदाई को संजोए हुए हूँ
नदियों की मुहाने जैसी है
दीवार पर टँगी तुम्हारी तस्वीर ।

चकित हूँ मैं इन दिनों
बेवज़ह ही दुखता है
तन दुखता है / मन दुखता है
या कहूँ ओ मेरे हुज़ूर !
कहाँ दुखता है, क्यूँ दुखता है
काश! कि इसका बीमा हो पाता
अदृश्य यह पीड़ा और
बेमौसम की ये यादें
लज्जा के कारण बिन बोले रहता हूँ
यादों का प्रधान कार्यालय है
दीवार पर टँगी तुम्हारी तस्वीर ।

किसान के गले का फ़ंदा

सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'फन्दा क्यों?' पर केन्द्रित

विजय शर्मा

विजय शर्मा
रीडर, लॉयला कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन
१५१ न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर ८३१ ००१
फ़ोन: ०९४३०३८१७१८, ०९९५५०५४२७१,
ईमेल : vijshain@yahoo.com

''**संगरूर** जिले के एक अकेले गाँव भुलन में ४९ जाट सिख किसानों ने आत्महत्या की।''

पिछले बीस वर्षों से भारत में किसानों द्वारा की गई आत्महत्या एक बड़ा मुद्दा रहा है। कुछ लोग इसे हल्का करने के लिए कहते हैं कि यह मात्र मीडिया हाइप अर्थात मीडिया के द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत की गई खबर है असल में यह कोई मुद्दा नहीं है। कटुता से आँख चुराना, दु:खदायी बातों से आँख फ़ेर लेना मनुष्य की सहज प्रवृति है। क्या आँख मूँद लेने से सच्चाई झुठलाई जा सकती है? यह एक कटु सच्चाई है कि भारत में किसान आत्महत्या कर रहे हैं कभी एकाध किसान कभी सामूहिक रूप से। मगर यह लगातार जारी है। मैसूर यूनिवर्सिटी के पोलिटिकल साइंस के प्रोफ़ेसर मुजफ़्फ़र आसदी ने इसके कारणों की खोज पर शोध कार्य किया है जो 'फ़ार्मर्स सुसाइड इन इंडिया: एग्रेरिअन क्राइसिस, पाथ ऑफ़ डेवेलपमेंट एंड पोलिटिक्स इन कर्नाटक' शीर्षक से नेट पर उपलब्ध है।

मगर हिन्दी साहित्य पर चुप है। बहुत खोजने पर पंकज मित्र को 'फ़िकिर' होती है, बसंत त्रिपाठी या फ़िर शिवमूर्ति 'आखरी छलाँग' लगाते नज़र आते हैं। क्यों भारतीय किसान आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध पर उतर आए हैं? उनकी क्या-क्या समस्याएँ है? सरकार इस विषय में क्या कर रही है? उसे क्या करना चाहिए? इन सबकी ज़्यादा फ़िक्र हिन्दी साहित्य को नहीं है। इसकी जाँच पड़ताल की फ़ुरसत उसे नहीं है। वैसे भी शोधपूर्ण लेखन की परम्परा हिन्दी में न के बराबर है। सरकार की कृषि संबंधी नीतियाँ काफ़ी हद तक इसके लिए उत्तरदायी हैं। कहने वाले कह रहे हैं कि सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीति इसकी जिम्मेदार है। खेती विरोधी शहर आधारित संरचना को बढ़ावा देती नीतियाँ किसानों को विभिन्न तरह से प्रताड़ित कर रही हैं। शुरू में किसानों ने खास कर कर्नाटक तथा तमिलनाडू के किसानों ने रैली, धरना, भूख हड़ताल द्वारा सरकार का ध्यान समस्या की ओर आकर्षित करना चाहा मगर सरकार के कान पर जूँ न रेंगी। इस समय तक किसान समस्या से जूझ रहे थे मगर आत्महत्या की बात उन्होंने नहीं सोची। मगर कुछ समय बाद आंदोलन धीमा पड़ गया और बिखरने लगा। इसी बीच दक्षिण कोरिया के एक किसान ने वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन को किसानों की मुसीबत का कारण बताते हुए आत्महत्या कर ली। मरते समय उसके हाथ में प्लेकार्ड था, ''WTO kills Farmers''। असल में समस्या बहुत जटिल है। आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरण सब एक दूसरे से जुड़ कर इसे बहुत जटिल बनाते हैं। कृषि का वर्ल्ड बैंक मॉडल जिसे मैकिंसी (McKinsey) मॉडल भी कहते हैं इसका एक अन्य कारण है। कारण चाहे जो हो यह एक सच्चाई है कि भारतीय किसान आत्महत्या कर रहा है और आए दिन कर रहा है। और हिन्दी साहित्य चुप है। ऐसी चुप्पी के समय प्रवासी कहानीकार सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'फ़ंदा क्यों?' अपनी ओर हमारा ध्यान खींचती है।

'फ़ंदा क्यों?' में सुधा ओम ढींगरा 'स्मृति तकनीक' शिल्प का प्रयोग करती हैं। सारा कुछ मोहन की स्मृति में घटित होता है। बीच-बीच में उसे अतीत अपनी आँखों के समक्ष घटित होता दीखता है। अतीत को प्रत्यक्ष देखना साहित्य तथा फ़िल्म कला में 'फ़्लैशबैक' तकनीक कहलाती है। मेडिकल डिक्शनरी के अनुसार ''अतीत के मानासिक आघात का बार-बार स्मरण फ़्लैशबैक'' कहलाता है। कहानी 'फ़ंदा क्यों?' में इस तकनीक का भी सफ़ल प्रयोग हुआ है। मोहन अपने युवावस्था के समय घर-परिवार की गरीबी का स्मरण करता है। उसे पिता की पिटाई से जो शारीरिक और मानसिक कष्ट हुआ था उसे याद करता है।

एक सुबह मोहन अपने खेतों में बैठा हुआ अपने बीते जीवन का सब याद कर रहा है। वह भारत में पीछे छूट गए और अमेरिका में बिताए अपने जीवन को याद कर रहा है। प्रवासी कहानी पर नॉस्टेल्जिया का आरोप बराबर लगता है। नॉस्टेल्जिया अर्थात पीछे छूट गए देश की स्मृति, उसके प्रति ललक, मूल देश की सारी बातों को बढ़ा-चढ़ा कर स्मरण करना। उसे ऐसे प्रस्तुत करना मानो धरती पर वही एकमात्र स्वर्ग है। प्रवासी साहित्य में अक्सर यह भावुकता का लिजलिजा चित्रण बन कर रह जाता है। नॉस्टेल्जिया अपने आप में कोई खामी नहीं है। रचनाकार के प्रारंभिक लेखन में यह अत्यंत स्वाभाविक प्रवृति है। मगर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है प्रवासी अपने नए परिवेश में पैठता जाता है उसके लेखन में इसकी मात्रा कम होने लगती है। समाप्त तो शायद यह कभी नहीं होता है। 'फ़ंदा क्यों?' में यह है मगर दूसरे रूप में है। यहाँ मूल देश छोड़ने की पीछे की कटु स्मृतियाँ हैं। पीछे छूटे परिवार का मोह है मगर पीछे छूटे समाज की स्थितियों का बेबाक चित्रण भी है। यहाँ मूल देश का सब कुछ चमकता हुआ नहीं है यहाँ वास्तविकता का घना अंधेरा, गरीबी का दारुण रूप भी चित्रित है जिससे घबरा कर

मोहन ने घर छोड़ा था और मुसीबतें झेल कर अमेरिका में बसा था। यह दीगर बात है कि आज वह एक सुखी-धनी प्रवासी किसान है। यह कहानी भारत की आर्थिक विपन्नता और सामाजिक-पारिवारिक संवेदनशीलता को दर्शाती है। कहानी किसानों की आत्महत्या रोकने का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करती है न ही किसानों के जीवन की तमाम समस्याओं को सुलझाने का कोई उपाय बताती है। कहानी का उद्देश्य समाधान बताना होता भी नहीं है। हाँ, वह इससे संबंधित कुछ सुझाव अवश्य देती है। परंतु कहानी 'फ़ंदा क्यों?' समाप्ति पार कई प्रश्न छोड़ जाती है।

एक सुबह अमेरिका में मोहन सिंह अपने खेत में बैठा है। अभी सुबह होने में समय है मगर वह जग गया है। उसका मन बहुत बेचैन है। यहाँ तक कि सुबह के पाठ में भी उसका मन नहीं लगता है। और वह बाहर आकर अपने खेत में नवार की खाट पर बैठ जाता है। यह खाट उसने पंजाब से मंगाई थी। इसी पर बैठ कर वह विचार करने लगता है। उसकी परेशानी का कारण कल अखबार में छपी हुई खबर है। अखबार में भारत में हो रही किसान आत्महत्या की खबर थी। पंजाब और बुंदेलखंड में किसान आत्महत्या और कर्ज से छुटकारा पाने के लिए किसानों द्वारा अपनी पत्नी बेचे जाने की खबरें थीं। इन्हीं खबरों ने उसे बेचैन कर रखा है। वह स्वगत कथन करने लगता है। पुरानी यादें ताबड़तोड़ आने लगती हैं। स्मृतियों के रेले को वह अपनी आँखों के सामने देख रहा है। कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने स्मृतियों को सिलसिलेवार प्रस्तुत किया है। शायद यह शैली को सरल रखने के लिए किया गया है। मोहन याद करता है कि उसके घर में भयंकर गरीबी थी। ''गरीबी से तंग आ चुका था वह, बापू के थोड़े से खेत और बड़ा परिवार, गरीबी दूर करने का उसे कोई मार्ग नज़र नहीं आता था। माले के घर से लाई गई लस्सी में, बासी रोटी भिगो कर, वही खाकर वह अपनी भूख मिटाता था। पाँचवीं से आगे वह पढ़ नहीं पाया था, स्कूल की फ़ीस, किताबों, कापियों के पैसे कहाँ से आते।'' कहा भी गया है पहले पेट पूजा फ़िर कोई काम दूजा। भारत में कुछ समय पहले तक लोगों की खासकर ग्रामीण लोगों की दृष्टि में शिक्षा का महत्तव न के बराबर था।

कहानीकार सुधा ओम ढींगरा ने स्मृतियों को सिलसिलेवार प्रस्तुत किया है। शायद यह शैली को सरल रखने के लिए किया गया है। मोहन याद करता है कि उसके घर में भयंकर गरीबी थी। ''गरीबी से तंग आ चुका था वह, बापू के थोड़े से खेत और बड़ा परिवार, गरीबी दूर करने का उसे कोई मार्ग नज़र नहीं आता था। माले के घर से लाई गई लस्सी में, बासी रोटी भिगो कर, वही खाकर वह अपनी भूख मिटाता था। पाँचवीं से आगे वह पढ़ नहीं पाया था, स्कूल की फ़ीस, किताबों, कापियों के पैसे कहाँ से आते।''

पाँचवीं पास गरीबी से तंग आए मोहन को त्राण दिलाता है बख्शिंदर। वह भी मोहन के गाँव का युवक है। ''बख्शिंदार उसके गाँव का लम्बा-ऊँचा पहला नौजवान था, जो गाँव के बाहर नौकरी करने गया था। साल में या कभी दो-तीन साल में एक बार वह गाँव आता, और दिल खोल कर पैसा खर्च करता।'' जाहिर सी बात है गाँव के युवा लोग उससे प्रभावित थे। मोहन भी। उसके मन में भी बख्शिंदर की तरह पैसा कमाने की इच्छा थी। अपनी यह इच्छा वह बख्शिंदर के समक्ष व्यक्त करता है। वह उसे बाहर काम करने की दुश्वारियों के विषय में बताता है कि कैसे अपना आत्मसम्मान दबा कर काम करना पड़ता है। मगर मोहन इस पर भी उसके संग जाने की ज़िद करता है तो बख्शिंदर उसे पिता की आज्ञा लेने के लिए कहता है। मोहन अपने बापू से जब यह बात कहता है तो घर में तूफ़ान आ जाता है। उन दिनों माता-पिता अपने बच्चों को मारना-पीटना अपना कर्त्तव्य मानते थे। वे यह काम बच्चों की भलाई के नाम पर करते थे। बच्चों के अधिकारों का किसी ने नाम भी नहीं सुना था। इसीलिए माता-पिता, शिक्षक, आस-पड़ोस के वयस्क लोग बच्चों की जब-तब धुनाई करते रहते थे। यह केवल भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में होता था। ऐनीमेशन के बादशाह वॉल्ट डिज़्नी को उसके बचपन में उसका पिता खूब पीटा करता था। हाथ में जो भी लगता उसी से पीटता था। साहित्य में बालकों पर होने वाले मानसिक और शारीरिक अत्याचार का चित्रण डिकेंस, शर्लिट ब्रोंटी तथा जेम्स जॉयस में खूब मिलता है। अरुंधति राय भी अपने एक मात्र उपन्यास 'द गॉड ऑफ़ स्मॉल थिंग्स' में दिखाती हैं कि पाप्पच्चि अपनी पत्नी माम्मच्चि और बेटी पर अत्याचार करते हैं। आगे चल कर जब उनका युवा बेटा उनका हाथ पकड़ कर उन्हें पत्नी को मारने से रोकता है तो पाप्पच्चि को यह बहुत नागवार गुज़रता है और वे पत्नी को मानसिक प्रताड़न के लिए मरते दम तक माम्मच्चि से बात नहीं करते हैं। आज स्थिति ठीक उलट है। आज यदि बच्चे को किसी ने हाथ लगाना तो दूर मुँह से भी कुछ कहा और बच्चे ने शिकायत की तो उस व्यक्ति को सजा और जुर्माना भरना पड़ेगा। हम एक छोर से सीधे दूसरे छोर पर चले गए हैं। दोनों ही स्थितियाँ खतरनाक हैं। काश कोई बीच का रास्ता होता। खैर हम बात कर रहे हैं मोहन की। जब उसने अपने पिता को बताया कि वह बाहर जा कर काम करना चाहता है तो ''उसके बापू ने डंडा पकड़ लिया और उस दिन उसे बहुत मार पड़ी थी। बदन पर पड़ते हर डंडे के साथ गालियाँ भी सुनने को मिली, ''हरामदा, खेताँ विच तैथों कम नहीं हुंदा, समुद्री जहाज ते मजदूरी करेगा, ओये कंजरा, मजदूर नालों किसान दी इज्जत ज्यादै।'' प्रेमचंद किसान को मज़दूर से ऊपर रखते हैं।

मोहन जवान था और जवानों की तरह सोचता-समझता था वह मार खाते हुए भी पिता से कहता है, ''बापू किस इज्जत दी गल कार्दैं, घार तां दो वेले दी रोटी वी खान नूँ नहीं।'' बच्चे भले ही वे युवा हों बड़ों से तर्क करें, उनसे आँख मिला कर बात करें एक समय यह भी रिवाज के खिलाफ़ था। पिता सच्चाई वह भी बेटे के मुँह से सुन कर

तिलमिला उठता है और बेटे की खूब जम कर धुनाई करता है। माँ-बहनें बचाने आकर खुद भी मार खाती हैं। रात को उसकी चोटों की सिंकाई करती हैं। उस दिन मिली चोटें आज भी उसकी स्मृति में ताज़ा हैं क्योंकि ये शारीरिक से ज़्यादा मानसिक हैं। उन्हें याद करके उसे झुरझुरी होती है।

मगर मोहन ने ठान लिया है कि वह बाहर जाएगा और घर की गरीबी दूर करेगा। इसलिए अगली बार आकर बख्शिंदर उसे बाहर चलने को कहता है तो वह घर में बिना बताए उसके साथ चल पड़ता है। अमेरिका के यूबा सिटी का एक जमींदार सरदार बिशन सिंह दोसांझ मज़दूरों की तलाश में है वही इन लोगों के पासपोर्ट, वीज़ा का इंतजाम करता है। मोहन को ''अमेरिका जाने और पैसा कमाने की खुशी और उत्तेजना तो थी, पर साथ ही गाँव छोड़ने और अज्ञात भविष्य का डर भी था।''

प्रारंभ में उसके लिए अमेरिका प्रवास सुखद न था। घर-परिवार की याद के अलावा वह एक बँधुआ मजदूर का जीवन बिता रहा था। परिवार की याद उसके लिए प्रेरणा और हिम्मत का काम भी करती। वह अपने परिवार की खुशहाली के लिए कष्ट सह रहा था। वह ''उन्हें अच्छी ज़िन्दगी देना चाहता था। बापू का क़र्ज़ा उतार कर उसे स्वाभिमानी किसान बनाना चाहता था, जो किसी के आगे हाथ न फ़ैलाए।'' शीघ्र ही वह यह करने लगता है। आने-जाने वालों के हाथ रकम भेज कर वह परिवार की आर्थिक सहायता करने लगता है। विडम्बना यह थी कि वह अपने परिवार से सीधा संपर्क स्थापित नहीं कर सकता था जो भी करना होता उसे जमींदार दोसांझ के मार्फ़त ही करना होता। काफ़ी समय उसे गैरकानूनी प्रवासी का जीवन बिताना पड़ा। ''कई बार वीज़ा की अवधि को बढ़ाया गया, फ़िर वह भी संभव नहीं रहा। अवैध रूप से छिप कर रहने लगे, जमींदार ने उन्हें अपने खेतों में बने कमरों में स्थान दे रखा था। कई साल उन्होंने जानवरों की तरह काम किया। मालिक उन्हें बहुत कम वेतन देता और दस गुना काम लेता था, उसमें से ही पैसा बचा कर वह भारत भेजता था। पुलिस सायरन की आवाज़ सुनते ही वे फ़सलों में छिप जाते थे।'' अमेरिका में दास प्रथा उन्नीसवें सदी में ही समाप्त पर दी गई थी। मगर गैरकानूनी तरीके से यह काफ़ी बाद तक जारी रही। अप्रत्यक्ष रूप से यह अब भी जारी है।

मोहन को अनपढ़ होने का खामियाजा भुगतना पड़ता है। मगर वह साहसी था और एक दिन जोखिम उठाकर ज़मींदार के सामने डट कर खड़ा हो जाता है। वह बिशन सिंह को धमकी भी दे डालता है। आज वह अपनी दिलेरी को याद करके खुश और गर्वित है। असल में जब बिशन सिंह दोसांझ ने देखा कि इसके पास तो खोने के लिए कुछ नहीं है मगर बात बाहर गई तो उसका अवश्य बहुत नुकसान होगा। उसने इन पर जितना खर्च किया था उससे कई गुना ज़्यादा वह वसूल चुका था अत: वह इनका पासपोर्ट लौटा देता है। मोहन ने दोस्ती का फ़र्ज निभाया, वह तब तक डटा रहा जब तक कि बख्शिंदर का पासपोर्ट भी वापस नहीं मिल गया। इसके बाद मोहन के दिन फ़िर जाते हैं। वह कई तरह के काम करता है। दस साल बाद भारत जाता है और विवाह कर पत्नी सहित अमेरिका वापस आता है। पत्नी पढ़ी-लिखी थी उसने घर बाहर दोनों संभाल लेती है। घर में डे केयर खोल लेती है जहाँ कामकाजी औरतों के बच्चों के संग उनके अपने बच्चे भी पलने लगे।

कहानी ऐतिहासिक घटना का सहारा लेकर समय को रेखांकित करती है, साथ ही उस समय अमेरिका में हुए सामाजिक-आर्थिक बदलाव को भी दिखाती है। इसी बीच ''गोली मार कर मार्टिन लूथर किंग की हत्या कर दी गई थी, उससे पनपी राजनीतिक उथल-पुथल ने सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को हिला दिया था, खेती-बाड़ी की ज़मीन बहुत सस्ती हो गई थी, उस समय उसने काफ़ी ज़मीन खरीद ली और वह अमेरिका का किसान मोहन सिंह हो गया, तीन बेटों और दो बेटियों का बाप, सौ एकड़ जमीन का मालिक, चार मंजिला घर है जिसका, गैराज में मँहगी कारें खड़ी हैं, बेटों के दो गैस स्टेशन और दो मोटल हैं।''

ऐसा नहीं है कि अमेरिका में खेती-किसानी में दिक्कतें नहीं आती हैं। मोहन याद कर रहा है, ''सूखा तो यहाँ भी होता है, बारिशें फ़सलें खराब कर देती हैं, अंधड़ खड़ी फ़सल उखाड़ देते हैं, पर ऐसे में सरकार मदद करती है। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ सहायता करती हैं और अमीर लोग अनुदान देते हैं। भारत में कोई उनकी मदद क्यों नही करता?'' कहानी किसानों की समस्या से निपटने का एक हल भी सुझाती है। सच यदि मिल जुल कर समस्या का समाधान किया जाए तो ऐसा नहीं है कि समस्या का हल न निकले।

मगर भारत में अभी ऐसा नहीं है इसलिए यहाँ आत्महत्याएँ हो रही हैं। यही कारण है कि पत्नी जसबीर के कहने पर भी मोहन भारत लौटने को राजी नहीं है। वह उससे कहता है ''वहाँ क्यों जाए, जहाँ मेरे किसान भाई, मेरी बिरादरी के लोग ज़हर खा रहे हैं, गले में फ़ंदा डाल रहे हैं, अपनी पत्नियाँ तक बेच रहे हैं।'' वह इस बात से इतना दु:खी होता है कि उसे अपना दम घुटता हुआ लगता है। मानो उसके गले में फ़ंदा कसता जा रहा है। एक बात ध्यान देने की है यहाँ वह खुद को सरदार या पंजाबी नहीं सोचता है। वह खुद को किसानों की बिरादरी में गिनता है। उनके दु:ख को अपना दु:ख मानता है, ऐसा ही अनुभव करता है तभी तो वह भारत के किसानों में खुद को मरता हुआ देखता है। और कैसी होती है तदनुभूति!

कहानी के अंत में मोहन को सब कुछ ठीक लगता है। ''उसने अपने गले पर हाथ फ़ेरा, सब कुछ ठीक था...'' यह वाक्य कहानी को कमजोर बनाता है। ज़रूरी नहीं कि हर कहानी का अंत सुखांत ही किया जाए। क्योंकि यह एक वाक्य पूरी कहानी में मोहन की भारतीय किसान के प्रति संवेदना को नष्ट कर देती है। बिना अंतिम पंक्ति के कहानी अधिक संगठित लगती। इसके ठीक पहले वाला जसबीर का वाक्य, ''दार जी, प्रभात बेले से आप यहाँ बैठे हैं, आपकी तबियत तो ठीक है? किसी को बुलाऊँ कि आपको डॉक्टर के पास ले जाए।'' ज़्यादा कारगर अंत हो सकता था।

●

संदर्भ

एनडीटीवीडॉटकॉम १७ मई २००६,
अभिव्यक्तिडॉटकॉम ४ जनवरी २००९
मेडिकल डिक्शनरी,
हौटन मिफ़िन कं. २००७
अभिव्यक्तिडॉटकॉम ४ जनवरी २००९
रॉय, अरुंधति गॉड ऑफ़ स्माल थिंग्स'
अभिव्यक्तिडॉटकॉम ४ जनवरी २००९
एनकार्टा प्रीमियम डीवीडी २००९
अभिव्यक्तिडॉटकॉम ४ जनवरी २००९

FAMILY DENTIST

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

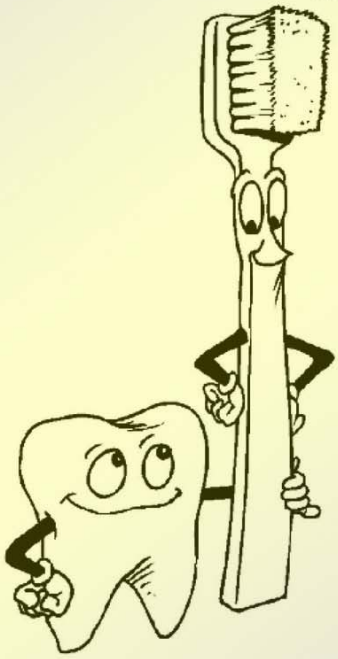

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Dr. Kiran Arora
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

ग़ज़ल

अंकित सफ़र

मेरा पागलपन मशहूर ज़माने में
एक अदा तो है तेरे दीवाने में
आँखों-आँखों में सारी बातें कह दी
तुम भी आ बैठे दिल के उकसाने में
शाम घुली है शब में ये जैसे-जैसे
चाँद उतर आया मेरे पैमाने में
सौंधी सी ख़ुश्बू यादों की देते हैं
भीगे-भीगे ख़्वाब रखे सिरहाने में
इन रिश्तों की गाँठ न खोलो तो बेहतर
उम्र लगेगी फिर इनको सुलझाने में
सूखे फूल, पुराने ख़त, बिसरी यादें
मिल जाते हैं हर दिल के तहखाने में
आओगे, फिर जाओगे, फिर आओगे
उम्र गुज़र जायेगी आने-जाने में

तेरी आँखों का ये जादू
काबू में है दिल बेकाबू
रात लपेट के सोया हूँ मैं
चाँद को रख कर अपने बाज़ू
एक ख़्याल तुम्हारा पागल
लफ़्ज़ों से खेले हू-तू-तू
जब लम्हों की जेब टटोली
तुम ही निकले बन कर आँसू
याद तुम्हारी फूल हो जैसे
सारा आलम ख़ुश्बू-ख़ुश्बू
बीच हमारे अब भी वो ही
तू-तू-मैं-मैं, मैं-मैं-तू-तू
नींद के पार उभर आया है
ख़ाब सरीखा कोई टापू

agriboyankit@gmail.com

ग़ज़ल

गौतम राजरिशी

उजली उजली बर्फ के नीचे पत्थर नीला-नीला है
तेरी यादों में ये सर्द दिसम्बर नीला-नीला है
दिन की रंगत ख़ैर गुज़र जाती है बिन तेरे लेकिन
कत्थई-कत्थई रातों का हर मंज़र नीला-नीला है
दूर उधर खिड़की पे बैठी सोच रही हो मुझको क्या
चाँद इधर छत पर आया है, थक कर नीला-नीला है
तेरी नीली चुनरी ने क्या हाल किया बाग़ीचे का
नारंगी फूलों वाला गुलमोहर नीला-नीला है
बादल के पीछे का सच अब खोला तेरी आँखों ने
तू जो निहारे रोज़ इसे तो अम्बर नीला-नीला है
मैंने तो चूमा था तेरी तस्वीरों को रात ढले
सुब्ह सुना के कुछ तेरे गालों पर नीला-नीला है
इक तो तू भी साथ नहीं है, ऊपर से ये बारिश उफ़
घर तो घर अब दफ़्तर का भी तेवर नीला-नीला है

हवा ने चाँद पर लिखी जो सिम्फनी अभी-अभी
सुनाने आई है उसी को चाँदनी अभी-अभी
कहीं लिया है नाम उसने मेरा बात-बात में
कि रोम-रोम में उठी है सनसनी अभी-अभी
अटक के छज्जे पर चिढ़ा रही है मुँह गली को वो
मुँडेर से गिरी जो तेरी ओढ़नी अभी-अभी
थी फोन पर हँसी तेरी, थी गर्म चाय हाथ में
बड़ी हसीन शाम की थी कंपनी अभी-अभी
मचलती लाल स्कूटी पर थी नीली-नीली साड़ी जो
है कर गई सड़क को पूरी बैंगनी अभी-अभी
सितारे ले के आसमां से आई हैं ज़मीन पर
ये जुगनुओं की टोलियाँ बनी-ठनी अभी-अभी
है लौट आया काफिला जो सरहदों से फौज का
तो कैसे हँस पड़ी उदास छावनी अभी-अभी

gautam_rajrishi@yahoo.co.in

सौरभ शेखर

पानी में कंकड़ बरसाया करते थे
वे दिन जब हम लम्हे ज़ाया करते थे
होड़ हवा से अक्सर लगती थी अपनी
अक्सर उसको धूल चटाया करते थे
देख के हमको राहगुज़र मुस्काती थी
पेड़ भी आगे बढ़ कर छाया करते थे
धूप बटोरा करते थे हम सारा दिन
शाम को बाँट के घर ले जाया करते थे
आज घटा अफ़्सुर्दा करती है हमको
हम बारिश में खूब नहाया करते थे
एक यही हम देखें सब खामोशी से
एक यही हम शोर मचाया करते थे
'सौरभ' शब थी एक वरक़ सादा जिस पर
लिख-लिख कर हम ख़ाब मिटाया करते थे

खाली-ख़ाली, बेमतलब, बेमानी शाम
एक उदासी की जैसे तुग़यानी शाम
तनहा, ढलता सूरज सबकी आँखों में
बाँट रही है ये कैसी वीरानी शाम
ओढ़ हरी चूनर फिर से तुम आ जाओ
और फ़ज़ा में छा जाये फिर धानी शाम
इसके जैसा इश्क़ हमें भी है दिन से
हमको दुश्मन कर लेगी दीवानी शाम
क्यों खोला फिर से तुमने अपना जूड़ा
देखो फिर से हो गई पानी-पानी शाम
वक़्त ठहर जाता है उसकी सुहबत में
कर देती है शब की नाफ़र्मानी शाम
शेर सरीखी लगती थी *'सौरभ'* तुमको
रफ़्ता-रफ़्ता बन गई एक कहानी शाम

saurabhshe7@yahoo.co.in

डॉ. शैल रस्तोगी — हाइकु

धूप उजास
दिन कातता रहा
ऊन के गोले ।

●

खोजता फिरा
वन-वन कस्तूरी
मन हिरना ।

●

छोटे-से सुख
रेत के घरौंदे थे
हवा ले उड़ी ।

●

बूँद थे हम
तुमसे मिलकर
हुए सागर ।

●

उम्र-चिरैया
इधर से उधर
ढूँढ़ती दिशा ।

●

खुशी -मदिरा
छलक पड़ते हैं
नैन -कटोरे ।

●

अच्छा है आएँ
दुख तो पाहुने हैं
चले जाएँगे ।

●

कल आएगा
फिर एक सपना
टूट जाएगा ।

●

दर्द -नदी में
नहाकर निकले
उजले हुए ।

●

हो गया मन
एक पूरा गगन
यादें चिड़िया ।

कृष्णा वर्मा — हाइकु

आँसू छिपा के
मुस्कुराने की कला-
विशेषज्ञ माँ।

●

रात ना होती
कौन सजाता स्वप्न
नई भोर के।

●

शीत की धूप
लिपट कर माँ -सी
दे कोसा प्यार।

●

दूब नहाई
भीग प्यार की ओस
पवन जले।

●

डूबता रवि
उम्र का एक दिन
साथ ले जाए।

●

लचके डाली
पुष्प-पात गा राग
बजाएँ ताली।

●

पात से पात
कहे मन की बात
बिछोड़ा बुरा।

●

बाट पिया की
कोरों पे रख फाग
तकते नैन।

●

चित-सागर
धड़कन-तरंगें
आया बसंत।

●

यादों की ओस
जब-जब पड़ती
भीगता मन।

डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा — हाइकु

लो आई भोर
झाँक रहा सूरज
पूर्व की ओर ।

●

उजियार हो
खुशियों के रंग से
सजे अल्पना ।

●

छू लें आकाश
मुट्ठी भर विश्वास
लेकर साथ ।

●

धानी चूनर
सतरंगी कर दी
भागा सूरज ।

●

सूरज तुम
चले अब किधर ?
पानी में घर ।

●

जल जीवन
बरसा तो निखरा
धरा का तन ।

●

नेह-बादल
बरसाया तुमने
उगे सपने ।

●

अक्षत रहे
धरती की चूनर
ओजोन-पर्त।

●

नाचेगा मोर ?
बचा ही न जंगल
कैसी ये भोर ।

●

व्यथा कथाएँ
धरा जब सुनाए
सिन्धु उन्मन ।

डा० जगदीश व्योम

हरसिंगार झरे

सारी रात
महक बिखराकर
हरसिंगार झरे

सहमी दूब
बाँस गुमसुम है
कोंपल डरी-डरी
बूढ़े बरगद की
आँखों में
खामोशी पसरी
बैठा दिए गए
जाने क्यों
गंधों पर पहरे

वीरानापन
और बढ़ गया
जँगल देह हुई
हरिणी की
चँचल-चितवन में
भय की छुईमुई
टोने की ज़द से
अब आखिर
बाहर कौन करे

सघन गंध
फैलाने वाला
व्याकुल है महुआ
त्रिपिटक बाँच रहा
सदियों से
पीपल मौन हुआ
चीवर पाने की
आशा में
कितने युग ठहरे

पीपल की छाँव

पीपल की छाँव निर्वासित हुई है
और पनघट को मिला वनवास
फिर भी मत हो बटोही उदास

प्रात: की प्रभाती लाती हादसों की पाती
उषा-किरन आकर सिंदूर पोंछ जाती
दाने की टोह में फुदकती गौरैया का
खंडित हुआ विश्वास

अभिशापित चकवी का रात भर अहँकना
मोरों का मेघों की चाह में कुहकना
कोकिल का कुंठित कलेजा कराह उठा
कुहु कुहु का संत्रास

सूखी-सूखी कोंपल हैं आम नहीं बौरे
खुले आम घूम रहे बदचलनी भौंरे
माली ने दो घूँट मदिरा की खातिर
गिरवी रखा मधुमास

सृष्टि ने ये कैसा अभिशप्त बीज बोया
व्योम की व्यथा को निरख इन्द्रधनुष रोया
प्यासे को दें अंजुरी भर न पानी
भगीरथ का करें उपहास

माना कि अंत हो गया है वसंत का
संभव है पतझर यही हो बस अंत का
सारंग न ओढ़ो उदासी की चादर
लौटेगा मधुमास
फिर क्यों होता बटोही उदास

पीपल की छाँव निर्वासित हुई है
और पनघट को मिला वनवास
फिर भी मत हो बटोही उदास

पूर्णिमा वर्मन

नया साल

देर रात शहरों में आता है
नया साल

करता है कनबतियाँ
डाले है गलबहियाँ
थिरक रही चौरस्ते
पैंजनियाँ कामिनियाँ
जगह-जगह उत्सव भरमाता है
सड़क-सड़क घूमता रिझाता है
नया साल

झन नन नन बजता है
रोशनी में सजता है
अनियारे जीवन में
घोलता सरसता है
ठिठुर-ठिठुर फिर से गरमाता है
धड़क-धड़क हर दिल हुलसाता है
नया साल

उड़ता गुब्बारों में
नाचता फुहारों में
गुमा हुआ शोरों में
निकल पड़ा ज़ोरों में
आसमान उजला हो जाता है
कड़क कड़क चकमक चमकाता है
नया साल

कविताएँ

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

युद्ध

युद्ध के विशाल
जबड़ों में
समा जाती हैं
संस्कृतियाँ
सभ्यताएँ
एवं
मानवता

परस्पर द्वेषों
के प्रहार
मानसिक विकृतियों
की अन्वितियाँ
और न जाने कितने
नृशंस प्रतिशोध

सीमाओं तक
नहीं सीमित रहते
ये युद्ध
घर-घर घुस कर
हुमकते हैं
इन के हुँकारे
एवं अहमक
प्रहार

लील लेते हैं
यह सिंदूर
और
ममता की मीठी गोद
और रह जाता है
केवल
बचे हुए
क्षणों का
अपरिमित बोझ

●

sudarshansuneja@yahoo.com

गुलशन मधुर

उन्होंने कहा है

वे मेरे शुभचिंतक है, लेकिन मुझ से परेशान हैं
उन्होंने मुझे रद्द कर दिया है
उन्होंने कहा है,
दिनों, महीनों और वर्षों के जाने के साथ
मैं बीतता चला गया हूँ
उन्होंने कहा है कि सपने पुरानी खबर हो चुके हैं
और कि बीते कल की सुर्ख़ियों में
भविष्य के किसी चमत्कारी स्कूप की तलाश
बेकार है
कि अनागत की अगवानी
खुली चौकस आँखों से की जाती है
स्वप्निल जाग्रति से नहीं

मैं जानता हूँ वे मुझे रद्द कर चुके हैं
पर वे मेरे शुभचिंतक है
मेरा दर्द समझते हैं
उन्होंने कहा है
कि मैं दुनियादारी के कुछ शेयर खरीद लूँ
और अपनी आशाओं की पूंजी
ठोस यथार्थ के बैंक में जमा करा दूँ

मैं जानता हूँ वे मेरे शुभचिंतक हैं
लेकिन मेरा दुराग्रह,
मेरी हठधर्मिता क्षमा करें
कौन जाने
भविष्य को पल भर में मुट्ठी में बाँधने की
उनकी आकांशा के शेयरों का
दिन-दिन चढ़ता बाज़ार
किसी और भी बड़े,
और भी कड़े यथार्थ से टकरा जाए
इसलिए मैंने कुछ आदर्श, कुछ आस्थाएँ
अपनी सोच को लॉकर में बंद कर रखी हैं
कौन जाने
यादों की पोटली में
अब तक सहज रखे ये पुराने सिक्के
किसी दिन काम आ जाएँ ।

●

gulshanmadhur@yahoo.com

डॉ. चन्द्र सूद

नज़र

जिस ओर भी मैं नज़र डालती हूँ
विस्तार के हर छोर को देख कर
स्वप्न कितने पालती हूँ मैं
धरा से गगन तक, गगन से धरा तक
विस्तार कितने नापती हूँ मैं
पाखी बनूं मैं जग घूम आऊँ
अनजान धरती के किनारे चूम आऊँ
मन में मगन होकर कोई भी गीत गाऊँ
कुछ तुमको सुनाऊँ, कुछ खुद भी गुनगुनाऊँ
हवा का मदिर, मंद झोंका बनूँ मैं
धरा पर पत्तियों के झरोखे से झरूँ मैं
कलियों को चूम, पत्तियों को सहलाऊँ
फूलों से कर लूँ अठखेलियाँ,
अपने मन को बहलाऊँ

●

मंजु मिश्रा

मैं बहुत सोचता

मैं बहुत सोचता फ़िर भी समझ न पाता क्यूँ

मैं नहीं चाहता, तुमको मैं याद करूँ
मन भाग-भाग फ़िर पास तुम्हारे जाता क्यूँ ।
मैं नहीं चाहता स्वप्न रंग में बिखराऊँ
फ़िर भी अनजाने चित्र तेरा बन जाता क्यूँ ।

मैं नहीं चाहता तुमको जग में रुसवा करना
फ़िर भी साथ तुम्हारे नाम मेरा जुड़ जाता क्यूँ ।
मैं नहीं चाहता इक पल भी उदास तुमको करना
फ़िर भी दुःख का दामन तुमसे बंध जाता क्यूँ ।

मैं नहीं चाहता जुड़ूं अतीत की स्मृति से
फ़िर मन हर पल बीता कल याद दिलाता क्यूँ ।
तुम मिले अचानक लगे हृदय को अपने से
मैं, बहुत सोचता फ़िर भी समझ न पाता क्यूँ ।

●

manjumishra@gmail.com

कविताएँ

कविता मालवीय

माँ

बता मैया ऊपर मिलें तो अपने अश्रु से,
मेरी हथेली की जीवन रेखा सींच देगी ।

बुरे स्वप्न से छलक आये स्वेद चूम कर,
मेरे मस्तक को ले छाती तले भींच देगी॥

मेरे पैरों की बिवाइयों के स्पंदकों को ढूँढ,
गुनगुने भोम से स्पर्श को उलीच देगी ।

माँ बता क्या वहाँ भी मेरे रो के घर आने पे
पड़ोसी यम पे लक्ष्मण रेखा खींच देगी॥

●

शैफाली गुप्ता

तेरे बाद....

विरह वेदना सी स्याही
उतरी आज इस लेखनी में,
जाने कैसे स्याह फूल खिलेंगे
आज इस जीवन की बेली में ।

वीरानों सा यह अकेला मंजर
खाली पड़ी इन हथेलियों में,
जाने कैसी सीरत सँवरेगी
तेरा नाम नहीं जिन लकीरों में ।

पीड़ा सा मधुर शब्द
सदियों छुपा रहा अंतस में,
जाने कैसे प्रेम की शीतल बयार
खोल चुकी यह स्रोत, तूफ़ानों में ।

शब्दों सा स्थायी बंधन
जुड़ा रूहों के कोनों-कोनों में,
जाने कैसे सुनसान रहेगी
यह कविताएँ तेरी जुदाई में ।

●

shaifaligupta80@gmail.com

नन्दलाल भारती

उजड़ी बस्ती

उजड़ी हुई बस्तियों में फिर
बेख़ौफ़ बहकने लगी है लपटें
मानवीय दर्द-अमानवीय दाह-कर्म
बार-बार की पुनरावृत्ति से
सुलगते रहते है दर्द
और उठते रहते है सवाल
अपराधी कौन
दुर्भाग्य इंसानियत का
आतंक बूढ़ी व्यवस्था का
नहीं होता समाधान
तबाही रचती छूत-अछूत के अपराधियों की
सुनाती रहती दास्तान, कहाँ फर्क पड़ता है
छूत-अछूत की दुनिया में
कर्म-मानव धर्म -फ़र्ज़ कत्लेआम
बावरा दबा कुचला बेबस
विह्वल रचने को पहचान
करता रहता लाख कोशिश
दबे कुचले की घायल पहचान
जग बदला ना बदला बूढ़ा विधान
ना थमती छूत-अछूत की लपटें
जारी नसीब की ठगे हक़ की डकैती
मानवता पर दाग भेदभाव
गढ़ देता छोटे लोग बड़े इल्ज़ाम
शोषित के दिल में सुलगते दर्द
नयनों में बसते नव्य सपने
कैसा अन्याय ...?
विकास की धुरी शोषित
क्या मिला इस जग में
अछूत का दहकता दर्द
हाड़फोड़ श्रम अछूत का जीवन संग्राम
छूत-अछूत की दुनिया
दर्द दहकता दर्द और प्रलय प्रवाह
पग-पग पर अग्नि परीक्षा
कर दिया जाता फेल बार-बार
हे छूत-अछूत दुनिया के रखवालो
उजड़ी बस्ती का आदमी कैसे कहे आभार

●

nlbharatiauthor@gmail.com

रजनी नैय्यर मल्होत्रा

कुलच्छनी

एक वक़्त था
जब मेरे जन्म पर
तुमने कहा था,
कुलच्छनी आते ही
भाई को खा गयी
माँ तेरी ये बात
मेरे बाल मन
में घर कर गयी
मेरा बाल मन रहने लगा
अपराधबोध-ग्रस्त,
पलने लगे
कुछ विचार,
क्या करूँ ऐसा?
जिससे तेरे मन से
मिटा सकूँ मैं
वो विचार,
जिससे कम कर सकूँ
तुम्हारे,
मन के अवसाद को
वक़्त गुज़रता गया
ज़ख्म भी भरता गया
फिर आया
एक ऐसा वक़्त
जब तुमने ही कहा
बेटियाँ कहाँ पीछे हैं
बेटों से
वो तो दोनों कुलों का
मान बढ़ाती हैं ।
माँ ?
शायद तुम्हें भी
अहसास हो गया
कि जन्म नहीं
कर्म भाग्य बनाता है ।
बेटों का भी,
और
बेटियों का भी ।

●

rajni.sweet11@gmail.com

कविताएँ

अनिलप्रभा कुमार

प्रदूषण

आजकल
हवा में घुल गई है
स्वार्थ की ज़हरीली गैस,
सारे बाज़ार में फैल गई
सब कुछ
काला-नीला कर गई।
मरा कोई नहीं
बस कुछ लोगों पर
ज़्यादा ही असर कर गई।
कुछ के सींग
कुछ के भयानक
पंजे निकल आए।
होड़ लग गई उनमें
उठा-पटक करने की
तेज़ाब डालने की
एक-दूसरे पर।
एक-दूसरे के
विकृत चेहरे देख
अट्टहास करते हैं वे
अपने-अपने आईने तो
कब के तोड़ चुके हैं वे।
अब जाल बुने जा रहे हैं
सब घिर रहे हैं
उसके अन्दर
साँस लेने को
छटपटा रहे हैं।

आग लगाने की तैयारी करो
जल जाए
यह ज़हरीलापन
शायद फिर से लोग
साँस ले सकें
एक आदमी की तरह
सहज, स्वाभाविक।

●

aksk414@hotmail.com

रेनू यादव

अस्तित्व

क्या तुम मुझे रोटी पर लगा
पैथन समझते हो
जब चाहा
मेरे नाम की मूहर लगा
ख़ुद अच्छे बन गए!
शायद,
तुम्हें पता नहीं
जब लोई पैथन में लपेटकर
बेली जाती है
तब सबसे अधिक दर्द
पैथन को होती है
जो बेलन से
गींज दी जाती है
फिर वह झड़कर
चौकी के चारों ओर
छितरा जाती है
और तुम्हें
तुम्हारा अस्तित्व दे जाती है।
शायद,
तुम्हें पता नहीं
जब पैथन झड़ने से बच जाती है
वह तवे पर रोटी से पहले
जलती है
और
तुम्हें जलाने से बचाती है।
शायद,
तुम्हें पता नहीं
रोटी से पेट भर जाता है
लेकिन पैथन...
बुहारकर फेंक दी जाती है।
सच बताना...
सच-सच बताना...
क्या तुम मुझे.....
पैथन ही समझते हो?

●

renuyadav0584@gmail.com

प्रमोद ताम्बे

हमारा सोचना

सोचा था,
रासायनिक युद्ध का यह परीक्षण
उन्हें बहुत महँगा पड़ेगा
भोपाल, उठ खड़ा होगा और लड़ेगा
हमारा सोचना चन्द लमहों में फिजूल हो गया
जब सारा शहर
मुआवजा और अन्तरिम राहत में खो गया।
सोचा था,
मेहनतकशों के साथ
साम्राज्यवाद का यह षड़यंत्र
उन्हें बहुत महँगा पड़ेगा
पूंजी का निरंकुश तंत्र अब सड़ेगा
हमारा सोचना चंद लमहों में फिजूल हो गया
जब न्याय,
कानून और अदालत की चौखट पर सो गया।
सोचा था,
लाशों का यह व्यापार
उन्हें बहुत महँगा पड़ेगा
देश,
उनके आदमखोर मुँह पर तमाचा जड़ेगा
हमारा सोचना चंद लमहों में फिजूल हो गया
जब दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र
साम्राज्यवाद की गोद में सो गया।

●

tambatin@gmail.com

लघुकथाएँ

अपनी-अपनी व्यवस्था

अंकुश्री

अंदर खचाखच भीड़ के कारण देह से देह छिला रही थी। जितने लोग बैठे थे, उससे अधिक खड़े थे। खड़े लोगों में से कुछ ने अपने हाथों में सामान भी पकड़ रखा था।

प्लेटफार्म की भागदौड़ अब कम हो गई थी और डिब्बे में हलचल अधिक बढ़ गई थी। कुछ आवाज़ें भी प्लेटफार्म से डिब्बे में घुस आई थीं। उनमें मूँगफली, पान और झालमुड़ी बेचने वालों की आवाज़ें विशेष रूप से सुनाई दे रही थीं।

डिब्बे में सवार लोगों का गंतव्य अलग था, उनकी समस्याएँ अलग थीं। उनका चेहरा अलग था ही, उनका व्यवहार भी अलग था। वे लोग बोल रहे थे, मगर आपस में कम, एक-दूसरे पर अधिक। टिकट लेकर चढ़ने पर भी नहीं बैठ पाने की कुव्यवस्था पर भी कुछ लोग बोल रहे थे। कुछ लोग इसलिए बोल रहे थे, क्योंकि उन्हें लग रहा था कि उन्हें भी बोलना चाहिए।

खिड़की के निकट की सीट पर एक ब्रीफकेस रखा था। उसे हटाकर वह बैठने ही जा रहा था कि ऊपर से आवाज़ आई , ''कहाँ तक जाना है?'' सामान रखने के लिए बनी ऊपरी बेंच पर एक सज्जन लेटे थे। आवाज़ उन्हीं की थी। उसे खुशी हुई कि यात्रियों की अनजानी भीड़ में से किसी ने उसके बारे में भी सोचा। किन्तु उसका गंतव्य सुन कर जब सज्जन ने कहा, ''मुझे वहाँ बैठना है'' तो उसकी सारी खुशी हवा हो गई । डिब्बे में खड़ा होने की जगह नहीं थी। फिर भी वे सज्जन न केवल लेटे थे, बल्कि बैठने के लिए उन्होंने दूसरी जगह भी छेंक रखी थी। अपनी व्यवस्था के प्रति वे बहुत खुश थे। उनकी खुशी चेहरे से साफ झाँक रही थी।

वह उनकी व्यवस्था देख कर दंग था। तभी एक यात्री ने ब्रीफकेस हटा कर वहाँ बैठते हुए अपने सहयात्री को आवाज़ लगाई ,''तुम भी बैठ जाओ !'' सहयात्री नीचे रखे ब्रीफकेस पर बैठ गया। तभी दो और यात्री आगे आए और ऊपर लेटे हुए सज्जन को बैठाकर खाली हुई जगह में बैठ गए। मगर उस सज्जन के मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकल पाई। लोगों की अपनी-अपनी व्यवस्था देख कर वह भी खिड़की से सटकर एक तरफ खड़ा हो गया।

बड़ा आदमी

ज्ञानदेव मुकेश

उस छोटे आदमी ने निश्चय किया कि वह एक बड़ा आदमी बनकर रहेगा। उसे ज्ञान था कि पद और पैसे ही आदमी को बड़ा बनाते हैं। अत: उसने पद और पैसा पाने का अथक प्रयास शुरू किया। मगर जल्दी ही उसे इस बात का भी ज्ञान हो गया कि पद और पैसा पाना कोई आसान काम नहीं है। वह दूसरे उपाय खोजने में लग गया। तभी उसे पता चला कि अपने जैसे छोटे लोगों की सोहबत छोड़ दी जाए और बड़े लोगों के नज़दीकी बढ़ाई जाए और उनके साथ उठना-बैठना किया जाए तो उसकी गिनती बड़े लोगों में हो सकती है। लिहाज़ा उसने अपने जैसे छोटे लोगों से घृणा करना प्रारम्भ कर दिया। उसके रिश्तेदार और मित्र उससे दूर जाने लगे। वह अकेला होने लगा। उसने इस बात की परवाह नहीं की। मगर इस बीच बड़े लागों से नज़दीकी बनाने में उसे सफलता भी नहीं मिली। हारकर उसने बड़े लोगों की कुछ तस्वीरें घर में टाँग लीं। वह अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर बड़े लोगों के ईर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहता। बड़े लोग उसे पास नहीं फटकने देते। मगर इसके बावजूद वह घीरे-धीरे महसूस करने लगा कि वह एक बड़ा आदमी बनने लगा है।

अचानक एक दिन अपने फ्लैट में उसकी मृत्यु हो गई- उस समय घर पर कोई नहीं था। कोई होता भी कैसे ? सभी उससे दूर जा चुके थे। हाँ, उसके घर की दीवारों पर बड़े लोगों की तस्वीरें ज़रूर टँगी थी, जो निर्विकार होकर उसकी लाश को देख रही थीं। लाश सड़ती रही। दुर्गंध फैली तो पड़ोसियों ने नगरपालिका को सूचना दी। नगरपालिका के चतुर्थवर्गीय कर्मचारी आए और उस बड़े आदमी की लाश को ठेले पर लादकर श्मशान ले गए। लाश दिन भर लावारिस पड़ी रही। शाम को एक डोम की नज़र पड़ी। उसने कहीं से एक फूल लाकर बड़े आदमी के पाँव पर रखा और उसकी लाश को विद्युत शव-दाह गृह में ढकेल दिया।

सुन्दर हाथ

डॉ. हरदीप कौर सन्धु

एक दिन अध्यापक ने दूसरी कक्षा के बच्चों को उनकी सबसे अधिक प्यारी किसी वस्तु का चित्र बनाने के लिए कहा। किसी ने सुंदर फूल बनाया तो किसी ने रंग- बिरंगी तितलियाँ । कोई सूर्य, चाँद, सितारे बनाने लगा तो कोई अपना सुंदर खिलौना, कोई नदी तो कोई घर । कक्षा के एक कोने में बैठी करमो ने बदसूरत -से दो हाथ बनाए। अध्यापक ने हैरान होकर पूछा, ''ये क्या बनाया ? हाथ ! किसके हैं ये हाथ ?''

'ये दुनिया के सबसे सुन्दर हाथ हैं, जो मेरी माँ के हैं ।''

''तुम्हारी माँ क्या करती है?''

''वह मज़दूरिन हैं । दिन भर सड़क पर पत्थर तोड़ने का काम करती हैं।'' करमो ने सिकुड़ते हुए उत्तर दिया ।

लम्बी कहानी

नरेन्द्र कोहली

वरांडे का वह कोना

(हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरेन्द्र कोहली की ये लम्बी कहानी धारावाहिक रूप में प्रकाशित की जाएगी।)

नरेन्द्र कोहली

जन्म: 6 जनवरी, 1940 जन्म भूमि सियालकोट (अब पाकिस्तान में)

शिक्षा: एम.ए., पी.एच.डी

उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, व्यंग्यकार तथा निबंधकार

प्रकाशित कृतियाँ:

व्यंग्य: एक और लाल तिकोन,पांच एब्सर्ड उपन्यास, आश्रितों का विद्रोह, जगाने का अपराध,परेशानियाँ,गणतंत्र का गणित, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियाँ, समग्र व्यंग्य -मेरे मुहल्ले के फूल, समग्र व्यंग्य -सब से बड़ा सत्य वह कहाँ है, आत्मा की पवित्रता।

कहानी संग्रह:परिणति, हानी का अभाव, दृष्टि देश में एकाएक, शटल, नमक का कैदी, निचले फ्लैट में, नरेन्द्र कोहली की कहानियाँ, संचित भूख।

उपन्यास: पुनरारंभ, आतंक, साथ सहा गया दु:ख, मेरा अपना संसार, दीक्षा, अवसर, जंगल की कहानी, संघर्ष की ओर युद्ध (दो भाग),अभिज्ञान, आत्मदान, प्रीतिकथा, महासमर- 1 (बंधन), महासमर - 2, (अधिकार) , महासमर - 3 (कर्म), तोड़ो कारा तोड़ो - (निर्माण), महासमर - 4 (धर्म), तोड़ो कारा तोड़ो - 2 (साधना), महासमर - 5(अंतराल), क्षमा करना जीजी!, महासमर - 6 (प्रच्छन्न), महासमर - 7 (प्रत्यक्ष), महासमर - 8 (निर्बंध), तोड़ो कारा तोड़ो - 3, तोड़ो कारा तोड़ो - 4, तोड़ो कारा तोड़ो - 5।

संकलन: मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, समग्र नाटक, समग्र व्यंग्य , समग्र कहानियाँ भाग-1, अभ्युदय (दो भाग) - (रामकथा, दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध (भाग १ एवं २) का संकलित रूप, नरेन्द्र कोहली: चुनी हुई रचनाएं , नरेन्द्र कोहली ने कहा (आत्मकथ्य तथा सूक्तियाँ), मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएं, समग्र व्यंग्य-1 (देश के शुभचिंतक), व्यंग्यसमग्र व्यंग्य-2 (त्राहि-त्राहि), समग्र व्यंग्य-3 (इश्क एक शहर का), मेरी तेरह कहानियाँ, न भूतो न भविष्यति (उपन्यास), स्वामी विवेकानन्द-जीवन, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, कुकुर तथा अन्य कहानियाँ (बाल कथाएँ) ।

नाटक-शंबूक की हत्या, निर्णय रुका हुआ, हत्यारे, गारे की दीवार, संघर्ष की ओर, किष्किंधा, अगस्त्यकथा, हत्यारे।

आलोचना: प्रेमचंद के साहित्य सिद्धांत (शोध-निबंध), हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धांत (शोधप्रबंध), कुछ प्रसिद्ध कहानियों के विषय में (समीक्षा), प्रेमचंद (आलोचना), जहाँ है धर्म, वहीं है जय (महाभारत का विवेचनात्मक अध्ययन)।

बाल कथाएँ: गणित का प्रश्न (बाल कथाएँ), आसान रास्ता (बाल कथाएँ), एक दिन मथुरा में (बाल उपन्यास), अभी तुम बच्चे हो (बाल कथा), कुकुर (बाल कथा), समाधान (बाल कथा)।

अन्य रचनाएँ: किसे जगाऊँ ? (सांस्कृतिक निबंध), प्रतिनाद (पत्र संकलन), नेपथ्य (आत्मपरक निबंध), माजरा क्या है? (सर्जनात्मक, संस्मरणात्मक, विचारात्मक निबंध), बाबा नागार्जुन (संस्मरण), स्मरामि (संस्मरण)।

पता: डॉ. नरेन्द्र कोहली, 175 वैशाली, पीतम पुरा, दिल्ली-34, भारत।

narendra.kohli@yahoo.com

आज डाक में एक भारी भरकम पत्रिका आई थी। पत्रिका मेरे लिए नई थी। मैंने कभी उसका नाम भी नहीं सुना था। कैसे सुनती ? मैं उस संसार से एक बार दूर चली आई, तो मैंने कभी लौट कर भी उस ओर नहीं देखा। पर यह पत्रिका मेरे पास कैसे आई ? तुमने ही भिजवाई होगी। ...

पत्रिका 'सुकृति' पर तुम्हारा चित्र था। वर्षों बाद तुम्हारा चित्र देखा था। तुम ही हो, यह पुष्टि करने के लिए नाम देखा - 'विनीत कनिष्क'। पूरा अंक तुम को ही समर्पित था। तुम्हारे सम्मान में निकला था यह अंक। तुम पचहत्तर वर्षों के हो गए थे।... पत्रिका मेरे हाथ में रह गई और मन वर्षों पीछे चला गया....

****

उस शाम तुमसे बहुत सारी बातें की थीं मैंने। तुमने भी मुझसे पीछा छुड़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। कहीं और जाने की इच्छा प्रकट नहीं की थी; न किसी और से बातें करने का प्रयत्न किया था। सब लोग अपनी-अपनी तैयारियों में लगे हुए थे या इधर-उधर व्यस्त थे। और हम वरांडे के उस कोने में खड़े बातें कर रहे थे। उससे पहले शायद हम इतने समीप कभी नहीं हुए थे। ... कितना अच्छा लग रहा था मुझे।

पर बात शायद उससे भी पहले शुरू हुई थी।... हमारे संबंधों का अंकुर उससे बहुत पहले का है। यह तो तब की बात है, जब अंकुर बहुत कुछ ऊपर उठ आया था। उस पर हल्की- हल्की कोंपलें भी फूट पड़ी थीं...।

मैंने कॉलेज में बी.ए. कक्षा में प्रवेश लिया था। तुम पहले से ही वहाँ थे। तुमने आई. ए. भी वहीं, उसी कॉलेज से किया था। तुम कालेज के पुराने विद्यार्थी थे। मेरे समान नवागत नहीं थे। तुम्हारी जड़ें वहाँ अच्छी तरह जमी हुई थीं। कैसे छाए रहते थे तुम सारी कक्षा पर ...

आज सोचती हूँ तो लगता है कि हिन्दी फिल्मों के नायक की सी स्थिति थी तुम्हारी। कक्षा में प्रथम तुम आए थे। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं के माने हुए वक्ता तुम थे। अंतर्विश्वविद्यालयीय

प्रतियोगिताओं में अपने विश्विद्यालय का प्रतिनिधित्व तुम कर आए थे। कॉलेज की साहित्य-परिषद् के मंत्री तुम थे। लेखक-मंडल तुमसे चलता था। कॉलेज में होने वाले नाटकों के नायक तुम थे। उस छोटे से नगर के उस कॉलेज में तुम वैसे ही थे, जैसे डॉ. ओझा कहा करते थे न, ''तुम कैसे छिटक कर यहाँ आ गए ? नहीं तो लड़के में ज़रा सा भी सामर्थ्य होता और उसके माता-पिता ज़रा से भी महत्त्वाकांक्षी होते, तो उसे जमशेदपुर से बाहर किसी बड़े नगर के कॉलेज में भेज दिया जाता था।''

तुम शायद इसलिए बाहर नहीं गए थे कि तुम्हारे माता-पिता इतने संपन्न नहीं थे। या शायद उससे भी अधिक इसलिए कि न तुम विज्ञान पढ़ना चाहते थे, न डाक्टरी, न इंजिनीयरिंग, तो तुम्हें दूसरे नगर में भेज कर पढ़ाने का खर्च कोई क्यों उठाता ?

पर तुम वह सब पढ़ना क्यों नहीं चाहते थे, जो उस समय का प्रत्येक मेधावी छात्र पढ़ना चाहता था।... केवल इसलिए, क्योंकि तुम लेखक बनना चाहते थे ? उस उम्र में कितने लड़के जानते हैं कि वे क्या बनना चाहते हैं ? तुम जानते थे कि तुम वैज्ञानिक, इंजीनियर या डाक्टर बनना नहीं चाहते; पर क्या तुम यह भी जानते थे कि आवश्यक नहीं कि शेष मेधावी छात्र भी वह सब कुछ बनना चाहते ही हों - किंतु वह सब बनने के साथ जो आर्थिक सुविधाएं समाज उनको देने वाला था, वे सारी सुविधाएं वे चाहते थे। तुम नहीं चाहते थे ? तुम नहीं चाहते थे कि तुम्हें अच्छा वेतन मिले, धन आए, बंगला हो, गाड़ी हो, धनाढ्य परिवार से पढ़ी-लिखी, सुंदर और सुशिक्षित पत्नी मिले ? सुंदर बच्चे हों, उनके लिए आया हो, रसोई में रसोइया हो, गाड़ी का ड्राइवर हो, बंगले के फाटक पर दरबान हो, स्मार्ट सुंदर और भरे पूरे यौवन वाली सेक्रेटरी हो ... तुम नहीं चाहते थे, यह सब ? ... मुझे तुम से यह सब पूछने का अवसर नहीं मिला। तब मैंने भी यह सब सोचा नहीं था। ... किंतु यदि तुम यह सब कुछ जान बूझ कर छोड़ रहे थे, तो तुम बड़े महान् थे। ... मैं आज भी उस महानता के लिए तुमको नमस्कार कर सकती हूँ। और यदि तुम बिना यह सब सोचे-समझे, अपनी धुन में, सनक में, लेखक बनने के लिए आगे बढ़ रहे थे, तो मैं मानती हूँ कि तुम बड़े सौभाग्यशाली थे। तुम अपनी अज्ञता में ही अपने हित में सब से लाभदायक निर्णय कर चुके थे।

तुम वैज्ञानिक, डाक्टर, इंजिनीयर ... कुछ भी बनना चाहते तो उसके लिए शायद नगर से बाहर भेज कर, तुम्हारी पढ़ाई का खर्च तुम्हारा परिवार उठा नहीं पाता। प्रयत्न करता तो आर्थिक दृष्टि से कठिनाई में पड़ जाता। और न करता तो तुम्हारे मन में सदा के लिए एक गाँठ पड़ जाती। ... वैसे भी तुम्हारा व्यक्तित्व प्रयोगशालाओं में बंधा रहने के लिए अनुकूल नहीं है - मानव मात्र में तुम्हारी रुचि तुम्हें वैज्ञानिक या इंजीनियर नहीं बनने देती। डॉक्टर बनते तो कुछ बेहतर स्थिति होती। पर डॉक्टर बन कर तुम कुछ लोगों को - सीमित संख्या में - उनके शारीरिक कष्टों से ही मुक्ति दे पाते। तुम लेखक न बन सकते तो डॉक्टर बनना ही तुम्हारे लिए उचित था-पर तुमको तो लेखक बनना था न। विराट मानवता को अनत काल तक भौतिक, और मानसिक कष्टों से मुक्ति तो वही दे सकता है ।

फिर उस छोटे से कॉलेज में तुम अद्वितीय भी तो हो गए थे। जमशेदपुर से बाहर जाते - पटना, बनारस, इलाहाबाद, दिल्ली, चंडीगढ़... कहीं भी जाते ; तुम अद्वितीय नहीं रहते। वहाँ तुम जैसे बहुत सारे छात्र होते। हो सकता है, तुम से श्रेष्ठतर भी होते। ... हो क्या सकता है, अवश्य ही होते ...

मैं नई-नई आई थी कॉलेज में। अभी मेरी जड़ें जमी नहीं थीं। आत्मविश्वास जागा नहीं था। ... अपने विषय में कोई भ्रम नहीं है मुझे। किसी प्रकार द्वितीय श्रेणी में बी.ए. कर लेना ही लक्ष्य था मेरा। तब तक मैंने कभी विश्वविद्यालय में प्रथम या द्वितीय आने की बात सोची भी नहीं थी। ... वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में कभी भाग नहीं लिया था मैंने। लेखिका मैं थी नहीं। कभी कोई कविता कहानी लिखी नहीं थी। ... कोई ऐसी सुंदरी भी नहीं थी। ... तुम से बात करने का कभी साहस नहीं जुटा पाई। उन सारे लैक्चर्स में मैं भी होती थी, जिनमें तुम होते थे। बात करने की इच्छा न हुई हो, ऐसा भी नहीं है। उन दिनों तुम से परिचित होना भी कॉलेज में प्रतिष्ठा पाने के समान था। पर तुम से बात हो नहीं पाई ...

उस दिन कालेज से कुछ जल्दी घर चली आई थी। सिर कुछ भारी था। कुछ करने-धरने को था नहीं। पढ़ने का मन नहीं था। अनमनी सी लेटी थी। शाम हो आई थी और आकाश पर बादल घिर आए थे। जमशेदपुर का मौसम ऐसा ही होता था उन दिनों। आजकल जाने कैसा हो।... दिन में हल्की सी गर्मी हो जाए, तो शाम तक बारिश होने लगती थी। सड़क के किनारे ही घर था हमारा। तुम्हें याद होगा, जमशेदपुर में 'घर' या 'मकान' शब्द प्रचलित नहीं था। वहाँ तो सब लोग घर को क्वार्टर ही कहते थे। शुद्ध रूप से कहूँ तो 'क्वाटर' कहते थे। हाँ, बिहारी लोग उसे 'डेरा' कहना अधिक पसंद करते थे। क्योंकि 'घर' तो वे अपने गाँव के स्थायी निवास को ही कहते थे।... पर मुझे अब 'घर' कहने की ही आदत पड़ गई है। 'क्वाटर' शब्द अब बड़ा अटपटा लगता है। ...

तो हमारा घर सड़क के ऐन किनारे पर था। वरांडे में खड़े हो जाओ, तो बड़े मज़े में देखा जा सकता था कि वर्षा होने से सड़क पर कैसी भगदड़ मचती है।

उस शाम भी जब बाहर ज़ोर की वर्षा की ध्वनि होने लगी, तो मैं वरांडे में निकल आई। अभी ठीक से सड़क पर दृष्टि टिकी भी नहीं थी कि तुम दिखाई दे गए। तुम उस समय कॉलेज से लौट रहे थे। तुम्हारे साथ संध्या भी थी।...

तब तक संध्या के साथ तुम्हारी मैत्री मेरी तनिक भी समझ में नहीं आई थी।... यह सब तो बाद में पता चला कि वह तुम्हारी बड़ी बहन की सहेली थी । बीच में पढ़ाई छोड़ देने के कारण, अब वह हमारी कक्षा में आ गई थी। तुम्हारे और उसके परिवारों में परिचय ही नहीं, मिलना जुलना भी था।

जब तक मुझे यह सब मालूम नहीं था, उसके प्रति एक विचित्र प्रकार की खीज थी मेरे मन में। हो सकता है कि उसे ईर्ष्या भी कहा जा सकता हो, खीज तुम्हारे प्रति भी थी। कैसे मूर्ख हो, क्या लड़की चुनी है ...

वर्षा की बौछार पड़ी। मैंने देखा कि तुम दोनों भीग रहे हो। सोचा, आवाज़ देकर बुला लूँ । पर न जाने कैसा तो संकोच मन में घिर आया। बजाय इसके कि आवाज़ दे कर तुम लोगों को बुलाती, मैं स्वयं ही वरांडे से हट कर कमरे में आ गई। पर कमरे में आ जाने भर से तो मुझे शांति नहीं मिल सकती थी। खिड़की के पास आ कर खड़ी हो गई ..छुपी भी रहूँ और तुम लोगों को देखती भी रहूँ ।

उस समय की अपनी स्थिति का वर्णन करने के लिए मुझे आज तक शब्द नहीं मिले।... मैंने

देखा कि तुम लोग असमंजस की स्थिति में सड़क के किनारे एक वृक्ष के नीचे रुक गए हो। संध्या मेरे घर की ओर संकेत कर रही थी और तुम कुछ कह रहे थे। ... फिर मैंने देखा, संध्या हमारे घर के फाटक की ओर बढ़ी। तुम उसके पीछे-पीछे थे। उसने फाटक खोला और भीतर आ गई। उस वर्षा में भीगते हुए भी तुमने रुक कर फाटक बंद किया। तब तक संध्या वरांडे तक आ चुकी थी। ... यह सब कुछ मैंने देखा, किंतु मैं बाहर निकल कर तुम लोगों का स्वागत नहीं कर पाई। जाने मुझे क्या हुआ कि मैं एक पुस्तक ले कर कुर्सी पर बैठ गई, जैसे मैंने कुछ भी न देखा हो। और बाहर जो कुछ भी घटित हो रहा हो, उसमें मेरी रत्ती भर भी रुचि न हो। पढ़ना तो उस समय क्या होता, पढ़ने का नाटक ही था।...

मेरी छोटी बहन स्वीकृति मुझे बताने आई कि तुम लोग आए हो। मैं समझ नहीं पा रही थी कि मैं क्या कह कर तुम लोगों का स्वागत करूँगी । पर मैं बाहर आ गई। आना तो था ही। सूचना मिल जाने पर भी भीतर छिपी कैसे रह सकती थी। संध्या ने अपनी छतरी निथर जाने के लिए एक कोने में रख दी थी । तुम अभी अपनी गीली बरसाती लिए, खड़े सोच रहे थे कि उसका क्या करो।

आज सोचती हूँ तो याद आता है कि सारी क्लास में दो ही लड़के बरसाती ले कर आते थे। एक वह छोटा सा, काला सा, बीमार सा बंगाली लड़का था न, जो पहली बार देखने पर आदिवासी ही लगता था; और दूसरे थे तुम। वह तो इसलिए लाता था, क्योंकि प्राय: बीमार रहता था और भीगने से बहुत डरता था । और तुम ? तुम शायद हर समय, हर परिस्थिति में मुस्तैद रहने के लिए। ... जैसा कि तुम स्वयं ही कहा करते थे 'मोस्ट वेल-इक्विप्ड पर्सन'; बाकी लड़कों में से तो कोई छतरी भी नहीं लाता था। छतरी लाना जैसे पौरुष को कलंकित करता था। लड़कियाँ ही अपने साथ छोटी-छोटी खिलौने जैसी छतरियां लाया करती थीं, जो उनको भीगने से बचाने में सदा असमर्थ रहती थीं।

कहना तो मैं बड़ी आत्मीयता से चाहती थी, ''लाओ विनीत, बरसाती मुझे दे दो। मैं टांग देती हूँ ।'' पर इतनी आत्मीयता दिखाने का साहस नहीं कर पाई। मुँह से इतना ही निकला, ''उधर खूँटी पर टांग दीजिए।''

तुम लेखक हो। दूसरों के मन को समझना तुम्हारा गुण भी है और काम भी। तब न भी समझ पाए हो, तो आज समझ सकते होगे कि मेरा मन तुम से खूब परिचित था, तुम्हारे बहुत निकट था किंतु सामाजिक व्यवहार में अभी हम दोनों का औपचारिक परिचय भी नहीं हुआ था। भीतर से तुम मेरे आत्मीय थे और व्यवहार में औपचारिक संबंध भी नहीं थे। ऐसे में उस अवस्था की किशोरी कैसा व्यवहार कर सकती थी ? ऊपर से भय कि कहीं कुछ अटपटा ही न कर जाऊँ ।

तुमने बरसाती को खूँटी पर टांग दिया था। रूमाल से अपने चेहरे को पोंछने और बालों को सुखाते हुए, तुमने कहा था, ''वर्षा ने अचानक ही आ घेरा। हम बड़े संकट में पड़ गए थे ; किंतु संध्या ने बताया कि वह आपसे परिचित है ...।''

पता नहीं, सहज रूप से बातचीत आरंभ करने के लिए तुम मुझे इन घटनाओं की भागीदार बना रहे थे, या फिर यह मेरे घर में इस प्रकार अनायास चले आने का स्पष्टीकरण मात्र था।... आज जानती हूँ कि कितनी भी वर्षा हुई होती, तुम उससे बचने के लिए इस प्रकार आश्रय के बहाने भी किसी अपरिचित के घर में नहीं घुसे होते। पता नहीं, यह तुम्हारा संकोच है, स्वाभिमान है या सामर्थ्य, ... थोड़ा किए, तुम किसी से सहायता माँगने वालों में से नहीं हो। और किसी लड़की के घर, इस प्रकार पहुँचना ... इतना तो मैं तब भी जानती थी कि और लड़कों के समान तुम मुझ से बातचीत करने अथवा मुझ से मिलने के लिए वर्षा की आड़ नहीं ले रहे थे। तुम्हें उसकी आवश्यकता भी नहीं थी। कक्षा की प्राय: लड़कियाँ तुम्हारी मित्र थीं, जो बन नहीं पाई थीं, वे उसका कष्ट भोग रही थीं। तुम्हें किसी प्रकार के बहानेबाजी की आवश्यकता नहीं थी। ... पर शायद तुम्हें अपनी गरिमा का बचाव करना था। तुम नहीं चाहते रहे होगे कि कोई तुम्हें इस प्रकार हल्का समझ ले ... मुझे आज भी तुम्हारी उन दिनों की मुद्राएं याद हैं। तुम देखने में, पहनने-ओढ़ने में शैबी कभी नहीं रहे। वेशभूषा की दृष्टि से तुम फैशनेबल भी कभी नहीं रहे। टशन का कोई संबंध नहीं था तुम्हारे साथ। पर तुम्हारा पहवाना अन्य लड़कों के समान भी नहीं था। गर्मियों में तुम सदा सफेद सूती पतलून-कमीज़ पहनते थे। पूरी आस्तीन की कमीज़, जो अधिक गर्मी होने पर थोड़ी मोड़ दी जाती थी। सर्दियों में अवश्य तुम बहुत रंगीले हो जाया करते थे। वह क्या कपड़ा होता था, जो ऊनी नहीं होता था; किंतु सूती लगता नहीं था - उसकी पतलून। सफेद सूती कमीज; और रंगदार, घर का बुना हुआ स्वेटर। कभी-कभी तो बड़े चटख रंगों के स्वेटर पहनते थे। स्वेटर और पतलून के रंगों का कंट्रास्ट भी आँखों को खींचता था। पर उन कपड़ों में भी कभी हल्के नहीं लगे तुम। और तुम्हारे कपड़े महंगे तो होते ही नहीं थे। तुम्हारी शायद इसी गंभीरता की प्रशंसा करती हुई लड़कियाँ कहती थीं कि 'विनीत छात्र तो लगता ही नहीं है। पूरा लैक्चरर लगता है।'

घर के बाहर चप्पलों में तुम्हें मैंने कभी नहीं देखा था। हर मौसम में बूट जुराबों में कसे हुए होते थे तुम। वर्षा ऋतु में भी। क्लीन शेवन। ढंग से संवरे हुए बाल। चुस्त-दुरुस्त। बिस्टुपुर बाजार की मुख्य सड़क पर, तब एक स्टूडियों हुआ करता था न। शायद 'साठेज़ स्टूडियो' नाम था उसका। वहाँ तुम्हारी एक वैसी ही फोटो लगी हुई थी न। क्या वह आज भी लगी हुई है ? नहीं, शायद अब नहीं होगी। बहुत पुरानी बात हो गई है वह।

तब मुझे कुछ नहीं सूझा तो इतना ही कहा, ''बैठिए न।''

''आप परेशान न हों।'' तुमने कहा था, ''वर्षा के हल्के होते ही हम निकल जाएंगे।''

यह तुम्हारी औपचारिकता नहीं थी। न तुम संकोच करते ही लग रहे थे। तुम उन दिनों भी ऐसी बातें सहज ही कैसे कर लेते थे। वह बंगाली लड़की, जो बहुत अच्छा गाती भी थी - अरे वही, जो यूथ फैस्टिवल में हमारे साथ राँची गई थी । ... शायद सरस्वती नाम था उसका। सुंदर थी। प्रभाकर बहुत प्रयत्न करता रहा था, उसे अपने गाने से प्रभावित करने का। ... उस लड़की ने राँची में तुम से कहा था न, ''आप अपनी बात कहने के लिए, इतने उपयुक्त शब्द कैसे चुन लेते हैं। हमको तो शब्द सूझते ही नहीं।''

तुम्हारी क्षमता पर आश्चर्य नहीं था मुझे। सरस्वती द्वारा तुम्हारे इस गुण को रेखांकित करने पर ही आश्चर्य हुआ था मुझे। इतनी समझ थी उसे ? भाषा की परख। ... और मैं कुछ कुछ ऐसा अनुभव करते हुए भी, इस तथ्य को इतने स्पष्ट शब्दों में कह क्यों नहीं पाई ?

वर्षा हल्की हो चली थी; किंतु माँ और स्वीकृति ने तुम लोगों को चाय के लिए रोक ही लिया था। तुम अकेले होते तो शायद तुम्हें रोकना संभव नहीं होता। तुम अशिष्ट हुए बिना भी बड़े मैटर ऑफ फैक्ट हो सकते थे... पर संध्या तुम्हारे साथ थी। उसे रोकने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। स्वीकृति उसकी बाँह पकड़ कर झूल गई थी ... ''दीदी, हम आपको ऐसे नहीं जाने देंगे।'' चाय पिला कर ही भेजा था, माँ ने तुम लोगों को।

उसके बाद कॉलेज में भी तुम अपरिचित नहीं रह गए थे। न तुमने मुझ से खिंचे रहने का प्रयत्न किया था। किंतु इतना सा संपर्क हमें बहुत निकट तो नहीं ला सकता था। और आज मैं स्वीकार कर रही हूँ कि मैं तुम्हारे निकट आना चाहती थी।...

कॉलेज में 'यूथ फेस्टिवल' के नाटक की चर्चा चली तो मैं केवल इसलिए उसमें सम्मिलित हो गई थी, क्योंकि नाटक के नायक तुम थे। ... वैसे मेरा परिवार ऐसा नहीं था कि मेरी इन सारी गतिविधियों को प्रोत्साहित करता। ... पिताजी का वेतन बहुत अधिक नहीं था; इसलिए कॉलेज इस विचार से गई थी कि कैसे भी बी.ए. कर के किसी स्कूल में पढ़ाने की नौकरी कर लूं। ... विचारों की दृष्टि से मेरे माता-पिता मुझे रोकने वाले नहीं थे; किंतु मैं स्वयं ही सोचती थी कि नाटक-वाटक के चक्कर में कहीं पढ़ाई न बिगड़ जाए। ... पर नाटक में तुम थे। मेरा मन हो रहा था कि मैं भी नाटक में रहूँ । जितनी देर नाटक की गतिविधि रहेगी, मैं तुम्हारे निकट अथवा तुम्हारे आस-पास रहूँगी । ... और तुम्हारे आस-पास रहना मेरे लिए अत्यंत सुखद था ... जैसे वह कोई स्वप्नलोक था, जहाँ जीवन की चिंताओं का कोई अस्तित्व नहीं था।

जीवन में वैसे सुख के क्षण शायद ही कभी आए हों, जैसे उस समय आए थे, जब डॉ. हुसेन ने मुझे नाटक के लिए चुन लिया था। दो-एक पूर्वाभ्यास हुए होंगे कि स्पष्ट हो गया कि उनको मेरा अभिनय पसंद नहीं आ रहा है।... या शायद उन्हें मुझे में अभिनय की क्षमता ही नहीं दिख रही थी। उस समय तक तो शायद उन्हें तुम्हारा अभिनय भी कोई विशेष नहीं भाया था। तुम्हें याद है, एक बार तो उन्होंने एकदम हताश स्वर में कहा था ''बात बन नहीं रही और हमारे पास समय भी अधिक नहीं है। इस समय हमारे पास मल्होत्रा

पर राँची में तुमने उसकी ओर आकर्षण का कोई प्रमाण नहीं दिया था। न उस होस्टल में, जहाँ हमें ठहराया गया था, न रिहर्सल में, न हुंडू जलप्रपात देखने जाते समय।

और प्रद्युम्न होते तो चुटकियों में काम हो जाता।''

मैं नहीं जानती थी कि मल्होत्रा और प्रद्युम्न कौन थे; किंतु तुम जानते थे। वे लोग हम से दो वर्ष सीनियर थे और डॉ. हुसेन के प्रिय अभिनेता थे। मल्होत्रा अच्छा अभिनेता था और प्रद्युम्न बहुत सुंदर लड़की थी। उसके मंच पर आते ही हॉल में सन्नाटा छा जाता था। अब वे लोग बी. ए. कर कॉलेज छोड़ चुके थे।

मेरा मन अपने अपमान से रुआंसा हो आया था, इच्छा हुई कि रो पड़ूं और चीत्कार कर कहूँ, ''तो बुला लीजिए अपने मल्होत्रा और प्रद्युम्न को। वे बी. ए. में फेल होते रहें और आपके नाटक करते रहें।'' किंतु तुमने कितने विश्वास से सहज ही कह दिया था, ''सर, आप हमें सिखाएंगे तो हम भी मल्होत्रा और प्रद्युम्न हो जाएंगे। जौहरी पत्थर को हीरा बना कर चमकाता है।'' और डॉ. हुसेन की आंखों में चमक जाग उठी थी।

नाटक के पूर्वाभ्यासों के कारण मैं भी तुम्हारे और संध्या के साथ ही कॉलेज आने-जाने लगी थी। मेरा घर तुम लोगों के रास्ते में ही पड़ता था। मैं अनुमानित समय के आस-पास आकर सड़क किनारे खड़ी हो जाती थी। पहले दिन तो मैंने थोड़ा बहाना भी किया था, कि संयोग से ही तुम लोगों से भेंट हो गई है। पर दूसरे दिन से बहाने की भी आवश्यकता नहीं रही थी। जब साथ जाना ही था, तो इस प्रकार के प्रपंच की क्या ज़रूरत थी।

****

नाटक ले कर पहले हम लोग राँची गए थे। तुम्हें भी याद ही होगा - यूथ फेस्टिवल का वह जमाना। बाद में तो जाने क्यों वह बंद ही हो गया। सरकार उसका खर्च संभाल नहीं पाई होगी, या फिर उसे अनावश्यक मान लिया गया होगा। ... अब तो जैसे सारे राष्ट्र को खेलों की ही आवश्यकता है। शेष सारी सांस्कृतिक गतिविधियाँ विश्वविद्यालयों से बहिष्कृत हो गई हैं। ... पर तब बड़ा जोश था। काफी बड़ा दल था हमारा। नाटक, गायन, वादन, एकल नृत्य, सामूहिक नृत्य, लोकनृत्य। ... कुछ और चीज़ें भी रही होंगी। पहले हमें राँची जाना था, क्षेत्रीय प्रतियोगिता में विजयी होने पर प्रदेश की राजधानी पटना; और वहाँ विजयी हो गए तो देश की राजधानी दिल्ली। पर दिल्ली अभी दूर थी।

आभास तो मुझे पहले भी था, पर वास्तविक रूप में राँची पहुँच कर ही मुझे मालूम हुआ था, कि कितनी मांग थी तुम्हारी - लड़कियों में। याद है तुम्हें वह प्रमिला ? मुझे तो उसने डरा ही दिया था। यहाँ संध्या साथ नहीं थी, और वैसे भी मैं नाटक की नायिका थी, इसलिए अधिकांशत: मैं ही तुम्हारे साथ होती थी। और लड़कियाँ भी थीं - हमारी कक्षा की। कुछ के साथ तुम्हारी घनिष्ठता भी थी। मैं मान लेती थी कि वे तुम्हारी पुरानी सखियां थीं। सब जानते थे कि उन लोगों के साथ तुम्हारे संबंध मैत्रीपूर्ण थे। अफेयर किसी के साथ भी नहीं थी। हाँ , प्रभा के विषय में थोड़ा सुना था कि कभी तुम उसकी ओर कुछ झुके थे। पर राँची में तुमने उसकी ओर आकर्षण का कोई प्रमाण नहीं दिया था। न उस होस्टल में, जहाँ हमें ठहराया गया था, न रिहर्सल में, न हुंडू जलप्रपात देखने जाते समय। बेचारी अपनी धुरी पर ही घूमती रही, तुमसे उसे कोई सहारा नहीं मिला। पर वह प्रमिला वह तुमसे चिपकने का काफी प्रयत्न कर रही थी। एक लड़की और थी न। वह छोटी सी, प्यारी-प्यारी उड़िया लड़की। बहुत ही भली लड़की थी वह। तुम्हारी आँखों में मैंने उसके प्रति बहुत सारा स्नेह देखा था। ठीक कह रही हूँ न। स्नेह ही कह रही हूँ, रोमांस नहीं। बेचारी कितना सम्मान करती थी तुम्हारा। पर इस प्रमिला ने तो हद ही कर दी थी। कोई लड़की कैसे इतनी निर्लज्ज हो सकती है।

●

(क्रमश: अगले अंक में जारी)

Beacon Signs 1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 **Fax: (905) 678-1271**

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

पुस्तक समीक्षा

अखिलेश शुक्ल

कविता संग्रह: साँसों के हस्ताक्षर
कवयित्री: डॉ. अनीता कपूर
प्रकाशक: अयन प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य: 250 रुपये मात्र पृष्ठ: 152

वर्तमान समय में काव्यजगत में उहापोह की स्थिति है। यदि इसे हिन्दी साहित्य से जोड़कर देखा जाए तो स्थिति और भी भयावह दिखाई पड़ती है। क्योंकि हिन्दी साहित्य विशेषकर काव्य में इतने अधिक प्रयोग हुए हैं कि आम पाठक कविता से लगातार दूर होता चला गया है। उन बेतुके प्रयोगों व अतुकान्त कविता के नाम पर पाठक पर जो कुछ थोपा या लादा गया है उसकी परिणति कविता से विरक्ति के रूप में सामने आई है।

आधुनिकता व कम्प्यूटर के वर्तमान दौर में मनुष्य के पास मनुष्यत्व के लिए ही समय नहीं है। उस स्थिति में उसे काव्य की ओर वापस मोड़ना लगभग असंभव सा कार्य है। पिछले कुछ वर्षो में काव्य में उन तथाकथित प्रयोगों के कारण जो हानि हुई है उसे पाटने के प्रयास किए जाना अति आवश्यक है। काव्य में हास्य, व्यंग्य व अनावश्यक लय प्रयुक्त किए जाने के कारण हुई हानि की भरपाई अनीता कपूर के काव्य संग्रह 'साँसों के हस्ताक्षर' में हुई है।

पिछले कुछ वर्षो विशेषकर इस शताब्दी की कविताओं में एक ओर प्रवृत्ति देखने में आई है। वह है मानवीय संवेदनात्मक अनुभव की कमी। अनीता की कविता संवेदनात्मक अनुभव तथा मानवीय रिश्तों से गहरा लगाव दर्शाती है।

अनीता जी के यहाँ संवेदना पाठकों को मनुष्यत्व से जोड़ती है। उन्होंने कविता में पूर्व से विचारित विषयों को अपनी गहरी संवेदना के माध्यम से गुंथा है। उनके यहाँ 'नया आकाश' का 'चित्र' है, वहीं दूसरी ओर 'बर्फ के गोले', 'पिघला चाँद' आपस में 'सीधी बात' करते हैं। वे स्पष्ट करती हैं कि 'चाँद सी रातें' हों जिसपर 'आँखों की सड़क' से 'सच' का सामना करते हुए 'साँसों के हस्ताक्षर' से रूबरू हुआ जाए।

ख्यात वरिष्ठ साहित्यकार लेखक रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने उनकी कविता पर सटीक टिप्पणी की है। उन्होंने लिखा है, 'कवयित्री की निश्छलता, परदुखकातरता इनकी कविताओं में बार बार छलक जाती है।' अनीता के यहाँ यही भाव छलक से पूर्व संवेदना के साथ घुलमिलकर पाठक के अंतर्मन को स्पंदित करते हैं।

अनीता कपूर की एक कविता है 'सीधी बात' जिसमें उन्होंने लिखा है – 'उस गहरे जल की / उस एकाकीपन की/ जहाँ तुम्हारी साँसों की / ध्वनि को सुना है मैंने /तुमसे सीधी बात करने के लिए।'

कविता में बात भले ही सीधी हो पर विचार ध्वनि बनकर जल में तरंगे उत्पन्न करते हैं। सीधी बात में जहाँ एक ओर साँसों का आवागमन है वहीं दूसरी ओर तपते रेगिस्तान को पार कर जीवन का आनंद लेने की कामना भी है।

अनीता की एक ओर कविता है जिसका शीर्षक है 'हम दोनों मौन हैं'। कविता मौन के शाब्दिक अर्थ के साथ-साथ अनेक संवेदनात्मक अर्थ भी व्यक्त करती है। विशेष रूप से इन पंक्तियों में – 'चाँद मेरी तरह पिघल रहा है / नींद में जैसे फिर चल रहा है / मेरी खुली आँखों में ख्वाब है / तेरी खुली आँखों में अलाव है।'

कविता के अंत तक आते आते यह मौन, ख्वाब और अलाव से निकलता हुआ फिर मौन पर जाकर समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार 'चाँद सी रातें' में उन्होंने चाँद जैसे शब्द को रहस्यात्मक ढंग से सामने लाने का सफल प्रयास किया है।

कवयित्री अनीता की संवेदना इस संग्रह में विभिन्न रूपों में सामने आती है। जिसे उनकी कविता पर विचार कर भलीभांति समझा जा सकता है। उनकी कविताओं में प्रकृति संसार भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। सामान्यत: जब भी कोई कवि कविता की रचना करता है तो प्रकृति सहज ही उसकी कविता में उपस्थित हो जाती है। उनकी कविताओं में प्रकृति दृश्य वर्णन पाठक के अंतर्मन में संवेदना का संचार करते हैं। कविता 'नागफनी के फूल' में देखें – 'प्यार से भागने के लिए / मैं हर रात छोड़ना चाहती थी / नागफनी के फूल तुम्हारे हाथों में / घर लौटने पर पाती थी / हर फूल मौजूद था मेरे सीने में।'

कविता में भले ही प्रकृति दृश्य सूक्ष्म रूप में उपस्थित हो, लेकिन पाठक उनकी संवेदना से सहज ही जुड़ जाता है। संवेदना का एक और रूप है जिसे मानव व पशु पक्षियों से जुड़ा माना जा सकता है। अनीता इनकी व्यथा को भी अपनी संवेदना के माध्यम से सुंदर ढंग से व्यक्त करती है। जैसे 'नन्ही बच्ची', 'संबंध', 'सुहागन' जैसी कविताओं में इसे महसूस किया जा सकता है। उन्होंने 'नन्ही बच्ची' कविता में लिखा है – 'मेरे अंदर की वह नन्हीं बच्ची बड़ी हो चुकी है / वह चाँद में तुमको देखकर/ अपने हज़ारों हाथों / छूना चाहती है तुम्हें।'

उनके इस संग्रह की कुछ कविताओं में ऐतिहासिक पौराणिक तथ्य भी संवेदना को स्थानान्तरित करने में सहायक हुए हैं। यह संवेदना भारत के गौरवशाली अतीत को वर्तमान से जोड़ती है। यहाँ उनकी संवेदना जहाँ हमारे अतीत से पोषित होती है वहीं दूसरी ओर वर्तमान से प्रेरित भी होती है। यों तो, 'खजुराहो', 'असली चेहरा', 'वक्त का अकबर', 'इतिहास की बेड़ी', 'वसीयत', 'शिव का धनुष' व 'लंका दहन' जैसी कविताओं की भाषा आम जन की भाषा है। पर इन कविताओं में पाठक के मन को आवेशित करने की संपूर्ण संभावनाएं उपस्थित हैं। 'वक्त का अकबर' कविता में – 'सलीम तुम न आए / अरमानों की अनारकली छटपटाती रही / तुम कालिदास, मीर या दांते बन सकते थे / काश गालिब ही बन जाते / तुम क्यों डरे रहे / गुलाम बने रहे / वक्त के अकबर से।'

अनीता की कविताओं के संदर्भ में हिन्दी चेतना की संपादक सुधा ओम ढींगरा लिखती हैं, 'डॉ. अनीता कपूर की कविताएँ सृजन-धर्म निभाते हुए हर पक्ष पर खरी उतरती हैं। वहाँ भाषा की क्लिष्टता, शब्दों का आडंबर नहीं है।'।

कविता के शिल्प के स्तर पर वे किसी बंधे बंधाए पेटर्न में विश्वास नहीं करती हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि भविष्य में उनकी कलम से संवेदनाओं के अन्य अनेक रूप भी दिखाई देगें।

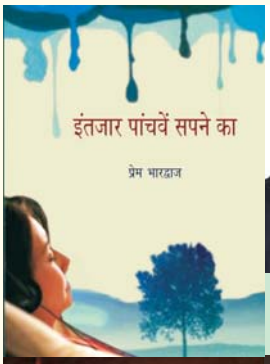

प्रेम भारद्वाज

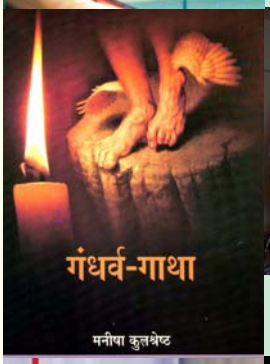

मनीषा कुलश्रेष्ठ

अजय नावरिया

जयश्री रॉय

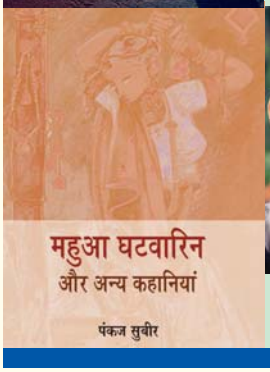

पंकज सुबीर

पुस्तक समीक्षा

पिछले कुछ वर्षों में सामने आई युवा पीढ़ी पर केन्द्रित दस पुस्तकों में सामयिक प्रकाशन ने पूरे परिदृश्य को टटोलने की कोशिश की है । ये युवा रचनाकार अपनी अपनी भाषा और शिल्प के साथ काम करते हुए पाठकों के सामने बदले हुए समय की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं और उस बदले हुए समय में ठहरे हुए समय को भी रेखांकित करते हैं । इन दस पुस्तकों में पाँच कहानी संग्रह हैं और पाँच उपन्यास । ये दस पुस्तकें नई सदी में सामने आई पीढ़ी का दस्तावेज़ हैं । ये दो कालखंडों के बीच में सामंजस्य सा स्थापित करती हुई नज़र आती हैं । वर्तमान समय के दस महत्त्वपूर्ण और चर्चित नाम इस सूची में शामिल किये गये हैं ।

इंतजार पांचवे सपने का: प्रेम भारद्वाज दूसरे अधिसंख्य नये कथाकारों की तरह रूप-विधान में नहीं भरमाते, न ही शौल्पिक कलाबाजियों या भाषिक जगलरी द्वारा अपने आनन्दलोक में मस्त रहकर जबरन चमत्कारों में भटकाते हैं। उनकी दृष्टि हर स्पंदन, हर आलोड़न, हर उथल-पुथल और हर टूट-फूट पर है-चाहे वह एक व्यक्ति की मौत हो, समाज की हो, शहर की हो या राष्ट्र की-बाह्य हो या आंतरिक। मौजूदा संग्रह की कहानियां एक मॉडल हैं कि बिना किसी कृत्रिम आलंबन के भी कला की शर्तों को बिना उलझाए भी कला के नये प्रतिमान निर्मित किए जा सकते हैं।

गंधर्व-गाथा: युवा पीढ़ी की बहुप्रशंसित कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ का यह पांचवां कहानी संग्रह है। इसकी ग्यारह कहानियां लेखिका की परिचित विशिष्ट शैली में अनूठी दुनिया के पात्रों और स्थितियों से मुलाकात करवाती हैं। ये रचनाएं हिन्दी की सामान्य कथा-कहानियों से हटकर हैं, क्योंकि मनीषा कुलश्रेष्ठ के पात्र बंधी-बंधाई लीक पर चलने के आदी नहीं हैं। कहानीकार की भाषा में कहें, तो ये 'हटेले चरित्रों' की कहानियां हैं। भारतीय मध्य वर्ग में ऐसे पात्र चौंकाते भले ही हों, हैं जीते-जागते और वास्तविक। इनका अंत:संघर्ष इनके चरित्र के कारण, सामान्य चरित्रों से कहीं अधिक होता है, क्योंकि अपनी ही दुनिया इन्हें अजीबोगरीब समझने लगती है।

यस सर: युवा पीढ़ी के सुपरिचत रचनाकार अजय नावरिया की बारह कहानियों का नव्यतम संग्रह है 'यस सर'। 'कोहरा' से प्रारंभ उनकी कथा यात्रा का यह दूसरा दशक है। स्त्री की परवशता, उसके सामाजिक- पारिवारिक शोषण पर प्रारंभ से ही कहानियाँ लिख रहे अजय नावरिया की मान्यता है कि स्त्री सभी समुदायों में दलित है। यूं दलित जीवन पर भी इनकी कहानियां अलग से ध्यान खींचने वाली हैं। सन् 2002 से 2011 तक की कालावधि में प्रकाशित इन चर्चित कहानियों में समय की संघर्षकथा के साथ ही, उसके अंतर्विरोध भी खुलकर सामने आए हैं।

...तुम्हें छू लूं जरा: अंर्तवस्तु के स्तर पर जयश्री रॉय में जहाँ एक ओर स्त्री सुख से वंचित वृद्धों की अतृप्त आत्माओं का कन्फेसन 'पिंडदान' है तो दूसरी ओर ग्राम्य समाज की बेटियों की तड़प 'बेटी बेचवा' है। पति द्वारा निरंतर उपेक्षा झेलती, अपनी ओर लौटती औरतें हैं (अपनी ओर लौटते हुए) तो कहीं बिल्कुल अलग भावभूमि पर इंसानी बिरादरी से खारिज कर दिए गए समाज के तलछट में पड़े सर्वहारा लोगों की कथा। कहीं सुख के दिन के मारात्मक विद्रूप है तो कहीं दुख से दंशित रातों की अवश मममता है-माँ, ऐसी ही उनकी अन्य कहानियाँ हैं।

महुआ घटवारिन और अन्य कहानियां: युवा पीढ़ी के बहुचर्चित कथाकार पंकज सुबीर की कहानियों का संग्रह 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियां' वर्तमान दौर का प्रतिनिधि संग्रह है। लेखक की नज़र विचारहीन शरीरों की तरह जी रहे उपभोक्ताओं पर तो है ही, बाजार की रणनीतियों पर भी है। यहाँ व्यक्ति की आवश्यकता का कोई महत्त्व नहीं है। बिलाए जा रहे कथारस को लौटाने के कारगर प्रयास में पंकज सुबीर 'चौथमल मास्साब और पूस की रात' व 'महुआ घटवारिन' जैसी शानदार कहानियां लिखते हैं तो कई पत्रिकाओं में उन पर गहन चर्चा भी होती है। उनकी कहानी आँखें खोल देने वाले सच पर फोकस करती हैं, जो बताता है कि 'जहाँ तुम जा रहे हो, वहाँ हर चीज की एक निश्चित कीमत है और वो दिए बिना तुम उसे प्राप्त नहीं कर सकते।' कथा में जिज्ञासा का महत्त्व सुबीर समझते हैं। उनकी कथा कल्पना जीवन-यथार्थ को सरस अंदाज में स्पर्श करती है।

हुल पहाड़िया: राकेश कुमार सिंह का यह उपन्यास आदि विद्रोही तिलका मांझी की समरगाथा है। कथाकार राकेश कुमार सिंह ने बड़ी लगन के साथ इस महानायक की मुक्तिकामी चेतना के साथ उस समय के पहाड़िया समाज के दुख-दैन्य, मरणांतक संघर्ष और इस जनजाति की अपने काल में सार्थक हस्तक्षेप की गाथा को शब्द दिए हैं। कहना ज़रूरी है कि यहाँ कथारस, शिल्प, भाषा के साथ ही उपन्यासकार ने गहन प्रामाणिक शोध भी कथा में इस तरह प्रस्तुत किया है कि तिलका मांझी जन-जन में व्याप सकें। यह उपन्यास इस महानायक पर एक बार फिर विचारोत्तेजक विमर्श की शुरुआत करेगा।

कुल जमा बीस: आपका बंटी, (मन्नू भंडारी) और दौड़ (ममता कालिया) के बीच के समयांतराल की पड़ताल का नतीजा है रजनी गुप्त का यह नया उपन्यास-'कुल जमा बीस'। बंटी बड़ा हो रहा है। यौवन और कैशोर्य की संधिरेखा पर दिग्भ्रमित इस बंटी (आशु) के माध्यम से रजनी ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली, करियर की दौड़ और अभिभावकों के दरकते दांपत्य के बीच पिसते और इनसे मुक्त होने की यंत्रणा में छटपटाते, भ्रमित, आभासी (वर्चुअल) दुनिया के दलदल में तिल-तिल डूबते जा रहे किशोरों के जीवन को वहाँ पहुंचकर दर्ज किया है जहाँ बूढ़े पुराने मूल्य खंडित हो रहे हैं। तीन पीढ़ियों के जीवन मूल्यों, अभीप्साओं और आदर्शों के द्वंद्व की इस कथा में अपनी पुरानी ज़मीन से उठकर रजनी ने वर्तमान समय, समाज और जीवन को गहन अनुसंधान, अन्वेषी अध्ययन, ताजातरीन अनुभवों और तरल संवेदनशीलता की रोशनाई से इस उपन्यास को रचा है।

कस्बाई सिमोन: हमेशा नए विषय पर विश्लेषणात्मक ढंग से कलम चलाने वाली युवा उपन्यासकार शरद सिंह का यह उपन्यास भारतीय सामाजिक परिवेश में 'लिव इन रिलेशन' का ऐसा आकलन प्रस्तुत करता है जो पाठकों के मन को गहरे तक स्पर्श करेगा। अपने जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती थी और 'लिव इन रिलेशन' वाला फंडा मुझे अपने ढंग जैसा लगा था। बिना विवाह किए किसी पुरुष के साथ पति-पत्नी के रूप में रहने की कल्पना ने मुझे रोमांचित कर दिया था। इसमें मुझे अपनी स्वतंत्रता दिखाई दी। मैं जब चाहे तब मुक्त हो सकती थी...वस्तुत: मुझे तो मुक्त ही रहना था...!

मेरा पता कोई और है: व्यक्ति, परिवार और समाज के अंतर्द्वंद्वों के बीच नए जीवन मूल्यों की कथाशिल्पी कविता का यह उपन्यास 'मेरा पता कोई और है' अपने पात्रों की आकांक्षाओं और सपनों की टकराहट से उत्पन्न मानवीय संबंधों की एक बारीक और बीहड़ अंतर्यात्रा है, जो पारिवारिक-सामाजिक मूल्यों के परंपरागत अर्थवृत्तों की परिसीमाओं का अतिक्रमण करते हुए संबंध, समाज और नैतिकता का नया व्याकरण रचता है। प्रेम, परिवार, धर्म और इतिहास के परस्पर संवादों के बीच जीवन में घटित होने वाले संयोगों की तार्किकता तलाशती इस कृति में मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने वाली सूक्ष्मतम अनुभूतियां अंतर्निहित हैं।

जीने के लिए: सरिता शर्मा के इस आत्म कथात्मक उपन्यास को हिन्दी के स्त्रीवादी लेखन के समूचे परिदृश्य में एक नई शुरुआत के तौर पर देखा जा सकता है। एक त्रासद प्रेम विवाह और असफल दांपत्य जीवन की लंबी यंत्रणा से बाहर निकलते ही लेखिका किडनी प्रत्यारोपण के दौरान रोंगटे खड़े कर देने वाले अनुभवों से गुजरती है। लंबे समय तक पितृसत्ता का शोषण-दमन झेलने के बाद भी एक बेहद साधारण स्त्री, यथास्थितिवाद का शिकार नहीं होती और लंबी कोशिश के बाद न केवल परिवार और समाज में होने वाले बदनामी के भय से मुक्त होती है, बल्कि चुपचाप अपनी नियति बदल डालती है। यह कृति साधारण स्त्री के भीतर छिपी असाधारण स्त्री की महिमा को रेखांकित करती है।

ये दस पुस्तकें अलग अलग विषयों पर विविध रंगी इन्द्रधनुष प्रस्तुत करती हैं । ये लेखक किसी विमर्श या वाद के पक्ष में खड़े न होकर केवल विचारों पर अपनी बात को केन्द्रित करते हैं । इनके लेखन में जो ताज़गी है वो पाठक को पढ़ते समय सुकून देती है । इन सबके बाद भी ये लेखक अपने समय के सरोकारों पर अपनी बात बेबाकी से रखते हैं । आधुनिक संदर्भों से लैस होने के साथ-साथ ये उन हथियारों का उपयोग भी जानते हैं जो आधुनिक नहीं हैं ।

राकेश कुमार सिंह

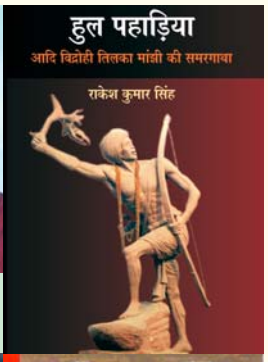

रजनी गुप्त

शरद सिंह

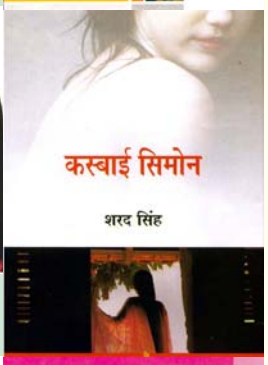

कविता

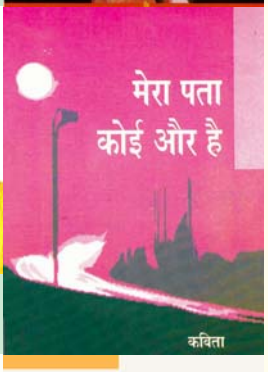

सरिता शर्मा

हमारी अलका

डॉ. कुसुम नैपसिक

गेट से अन्दर घुसते ही पैर चिकनी मिट्टी पर पड़ा और मैं सर्र से फिसलकर दो फीट आगे पहुँच गई। गिरने के सारे संयोग हुए पर भगवान की दया से मैं गिरी नहीं। आज कॉलेज का पहला दिन है। मैंने सबसे अच्छे कपड़े पहनकर ख़ास तैयारी की है। क्या हुआ, जो ये एक गर्ल्स कॉलेज है। अपने कॉलेज जाने के अरमान तो निकालने ही थे।

कॉलेज ! कॉलेज ! ये शब्द सालों से सुनती आई थी। सुना था, कॉलेज में बहुत आज़ादी होती है। स्कूल जैसे बंधन नहीं होते। मर्ज़ी हो तो क्लास करो, न मन हो तो फ़िल्म देख आओ। यहाँ बात-बात पर पेरेंट्स को नहीं बुलाया जाता, लो आज आज़ादी के माहौल में मैंने पहला क़दम रख दिया।

मन उत्साह से भरे हुए बरसाती मेंढ़क की तरह फुदक रहा था। कमरा नंबर 12 ढूंढते-ढूंढते अपने ख्यालों में गोते लगाते मैं चली जा रही थी, तन्द्रा टूटी जब लगा किसी ने मुझे पुकारा है, ''एक्सक्यूज़ मी, क्या आप बी.ए. में आई हैं?'' मैंने हामी में सिर हिला दिया। उसने कहा, 'मेरा नाम अलका अग्रवाल है। मैं भी बी.ए. में आई हूँ।'

गेहुँए रंग पर साधारण नयन-नख्श और उस पर हलके हरे रंग का लखनवी सूट-सलवार, अतिसाधारण व्यक्तित्व की सूचना दे रहे थे। हम दोनों क्लास ढूंढकर अन्दर जा बैठे और फिर बातों का दौर तब तक जारी रहा जब तक प्रोफेसर नीलिमा क्लास में दाख़िल न हो गयीं। मन से आज मैं सचमुच बहुत खुश थी। कॉलेज के तीन सालों के बारे में मैंने बहुत सुना और पढ़ा भी था पहले से ही सोच रखा था, जो भी हो इन तीन सालों को अपनी तरह से जिऊँगी। दोस्ती करुँगी, पार्टी करूँगी, फ़िल्में देखूँगी और कुछ समय मिला तो पढूँगी भी।

जब मैंने अपनी ख्वाहिशों को अलका के सामने स्वादिष्ट पकवानों की तरह सजा कर रखा तो वह भी मन ही मन इन सबका स्वाद लेने लगी लेकिन तभी उसके मम्मी-पापा बीच में आ गए, और उसने मन के लड्डुओं को फेंक दिया बोली, 'पार्टी, फ़िल्में मेरे लिए नहीं हैं। घरवालों को मालूम हो गया तो मार पड़ेगी, कॉलेज आना बंद हो जाएगा।'

''तू महान है, तू क्या समझती है, मैं अपने घर जाकर अपनी खुराफातों के बारे में बताऊँगी? तू पूरी बुद्धू है। तेरा कुछ नहीं हो सकता। याद रख अब हम कॉलेज में हैं, कॉलेज में।'' मैंने कॉलेज शब्द इस रौब के साथ कहा, जैसे कॉलेज परमिट देता है उलटी-सीधी हरकतें करने का।

ख़ैर जो भी हो अलका दिखने में जितनी भली थी बातचीत में उतनी ही भोली। बस थोड़ी सी दब्बू क़िस्म की थी।

मैं जो भी लेक्चर अटेंड करने गई, वहाँ हिंदी मीडियम वाले और अंग्रेजी मीडियम वालों का ग्रुप अलग-अलग ही रहा। कपड़े चाहे हम जैसे भी पहन लें - स्कर्ट या जींस लेकिन जब मुँह खोलते, तो कौवा और हंस का फ़र्क पता चल ही जाता था। हिंदी मीडियम वालों को हमारे कॉलेज में ''बहनजी'' का ख़िताब दिया जाता था। दिया करें! हमें क्या? डेमोक्रेसी है- हम भी तो उन्हें ''अंग्रेजी की दुम'' कहा करते थे।

कुछ ही दिनों बाद हमारे हिंदी ग्रुप की लड़कियों ने एनसीसी में अपना नाम लिखवा लिया। अलका के मम्मी-पापा ने पहले थोड़ी न-नकुर की, पर बाद में वो भी मान गए। हमारा ग्रुप एनसीसी के कितने ही कैम्पों में गया।

पता नहीं ये ''कैम्पों'' शब्द कहाँ से आया,कैंप के बहुवचन के लिए, पर हम लोग कैम्पों, फ्रेंडों, टीचरों जैसे शब्दों का इस्तेमाल ऐसे ही धड़ल्ले से किया करते थे। शायद हिंदी ने अंग्रेजी को ऐसे ही अपनेआप में समाहित कर लिया था।

जो भी हो इन कैम्पों में मुझे जितना मज़ा आया ज़िन्दगी में शायद ही फिर उतना मज़ा आया। हमारे ग्रुप के लोगों की दोस्ती और भी गहरी हो गई थी। बस एक मुसीबत होती थी जब कॉलेज की टीचरों को इन कैम्पों के बारे में बताना होता था और उनके हस्ताक्षर फॉर्म पर लेने होते थे। कभी-कभी कुछ टीचर्स हमें घुड़की भी दे देतीं और कहतीं -''पढ़ने में तो कोई ध्यान है नहीं, सिर्फ एनसीसी करवा लो।''

कोई कहतीं, ''तुम मेरी क्लास में हो? मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा। कभी आती भी हो या एनसीसी में ही रहती हो।''

पता नहीं इन सरकारी स्कूलों में बच्चों को इतना डराया, धमकाया और मारा क्यों जाता है कि बच्चे सारी ज़िन्दगी टीचर्स के सामने मुँह खोलने से घबराते हैं। टीचर का मतलब है हौवा। कभी थोड़ी सी गलती हुई नहीं कि थप्पड़ रसीद।

लेकिन क्योंकि मैंने अपना मकसद पहले ही मज़े करना बना लिया था सो दुनिया जाए तेल लेने। वो सलमान खान का एक डायलाग है ना ''अगर मैंने कमिटमेंट कर दी तो मैं अपने आप की भी नहीं सुनता'' बस वही मेरा हाल था।

मैंने टीचर्स की बातों को कभी दिल से नहीं लगाया, तब भी नहीं जब अंग्रेजी की टीचर ने हिंदी और अंग्रेजी वालों को अलग-अलग बैठाया था। कहने को तो कह रही थीं कि इससे उन्हें पता रहेगा कि किस पर ज़्यादा ध्यान देना है लेकिन उनका चेहरा जब अंग्रेजी मीडियम वालों की तरफ होता तो सूरजमुखी की तरह खिला हुआ होता, जब हमारी तरफ होता तो मुरझाया हुआ जैसे कह रही हों बेचारों को कुछ समझ नहीं आया होगा।

वैसे भी हमारा हमेशा मज़ाक बनता ही रहता था। दूसरे पाले की लड़कियाँ खीं-खीं करके हँसतीं थीं जब हम कोई ग़लत जवाब देते या अंग्रेजी का उच्चारण ग़लत हो जाता। हिंदी वालों के लिए ये हँसी बड़ी आम बात है उनको जीवन भर सुनना है। सुनीता जैन ने अपनी एक कविता ''दिल्लीवाले'' में लिखा भी है ''हिंदी का क्या वह तो भाषा है उनकी जो पढ़ते हैं घटिया सरकारी स्कूलों में।''

ख़ैर हमारी अलका को हमेशा से इन लोगों और टीचर्स का खौफ़ रहता था। इन सब ने उसे डरपोक बना दिया था। मैंने उससे कहा भी अगर कैंप के लिए टीचर्स से बात नहीं करेगी तो कॉलेज में हाज़िरी कम हो जाएगी। पागल लड़की नहीं मानी। कहती रही कुछ नहीं होगा।

हमारी परीक्षाएँ नज़दीक आने लगीं हम सबका रुझान अब पढ़ने की तरफ हो गया। मैं भी अब

उसे फ़ोन करती तो पढ़ाई के बारे में ही। एक दिन अलका ने बताया कि उसे प्यार हो गया है। मैं जोर से हंस दी। मैंने कहा, ''अबे! हमारी गिलहरी शेर कैसे बन गई या फिर सिर्फ कह ही रही है।''

हम सहेलियों में मुझे उससे यह उम्मीद नहीं थी इसलिए नहीं कि उसमें कोई खराबी थी बल्कि वो दब्बू थी। मम्मी-पापा, भाई का डर उसे हमेशा सताता रहता। ज़रा देर हुई नहीं, ''मम्मी डांटेंगी'' की रट लग जाती। हम उसे समझाते जब तू कोई उल्टा काम नहीं कर रही है तो क्यों घबराती है। और अब उस दब्बू अलका को प्यार हो गया ये बात मेरे विश्वास से परे थी।

फिर भी मैं उसके लिए खुश थी लेकिन जब उसने बताया कि उसने लड़के को देखा नहीं है सिर्फ फ़ोन पर आवाज़ भर सुनी है। तो मेरी हँसी फूट पड़ी, मैंने कहा कोई भूत-प्रेत से तो प्यार नहीं हो गया, उसे बुरा लगा। लगना ही था उसके पहले-पहले प्यार का मज़ाक जो उड़ाया था मैंने।

उसने बाद में बताया ''हुआ ये कि कुछ दिन पहले मुझे एक लड़के ने फ़ोन किया उसने कहा कि आप हमारी कंपनी की ओर से लकी ड्रा में चुने गए हैं। आप हमारे ऑफिस आकर अपना गिफ्ट ले जाइए। इस तरह के काल्स पर जैसे सब नो थैंक्स कहके फ़ोन काट देते हैं वैसे ही मैं भी करने वाली थी कि उसने कहा, ''सुनिए फ़ोन मत काटिए प्लीज़, देखिए आप गुस्सा न करें तो एक बात कहूँ आपकी आवाज़ बहुत अच्छी है। पता नहीं क्यों मुझे आपसे बात करके बहुत अच्छा लगा, क्या मैं आपको दुबारा फ़ोन कर सकता हूँ प्लीज़, कल इसी वक्त।'' अब मैं क्या करती मैंने डरते-डरते कह दिया, ठीक है। अगले दिन बात हुई और ये सिलसिला चल पड़ा।''

मैंने अलका से कहा, ''यार इस तरह का प्यार ख़तरनाक हो सकता है। क्या पता वह कौन हो।''

अलका ने कहा, ''मुझे उसपर विश्वास है। वो बहुत अच्छा है। मुझसे इतनी प्यार से बातें कभी किसी ने नहीं की।''

मुझे लगा इस लड़की को तो प्यार का काँटा लग चुका है। अब इसे कोई नहीं बचा सकता। उसने बताया अब वह अपने घरवालों के सामने भी उससे कोड में बात कर लेती है। मेरा नाम लेकर।

मुझे मज़ा आने लगा। धीरे-धीरे उसका प्यार परवान चढ़ने लगा, लड़के ने मिलने की ज़िद की और अब वे दोनों अगले हफ़्ते मिलने भी वाले थे।

मैं सब जानती थी। अलका ने मुझसे कभी कुछ नहीं छुपाया। वह बी.ए. के बाद एम. ए. करना चाहती थी और एक टीचर बनना चाहती थी और उस अनदेखे लड़के से शादी। मैं अलका के लिए खुश थी। चलो वह सपने तो देखती है।

अचानक मुझे अलका का फ़ोन आना एकदम बंद हो गया। मैंने सोचा शायद पढ़ाई में लगी होगी। ये सोचकर मैंने उसे भी फ़ोन नहीं किया। इम्तिहान के दिनों में मुझे ख़ुद ही कुछ होश नहीं रहता। पर मैंने अलका को कॉलेज में कहीं नहीं देखा।

हफ़्ते भर बाद जब हमारा आख़िरी पर्चा रह गया, तो पूजा ने मुझे बताया तुझे पता है अगले महीने अलका की शादी है। मेरी चीख निकल गई। क्या तू सच कह रही है। ऐसा कैसे हो सकता है।

पूजा ने पूछा तुझे तो उसके फ़ोन वाले लड़के के बारे में मालूम होगा। मैंने हाँ में सिर हिला दिया। पूजा बोली मुझे उसकी कजिन मिली थी उसने बताया कि जब एक दिन अलका उस फ़ोन वाले लड़के से बात कर रही थी तो दूसरे कमरे में रखे फ़ोन जिसका एक ही कनेक्शन था उसके भाई ने उठा लिया और उनकी बातें सुन लीं। बस उस दिन तो अलका पर ऐसा कहर बरपा कि पूछो मत।

उसकी मम्मी ने उसे चोटी खींचते हुए कमरे में बंद कर दिया। उसे कुछ कहने का मौक़ा ही नहीं दिया गया। बेचारी चिल्ला-चिल्ला के कह रही थी कि वह उसे नहीं जानती पर कोई उसकी बात मानने वाला नहीं था। उस पर एक और बिजली तब गिरी, जब हाज़िरी कम होने की वजह से उसे कॉलेज में फाइन भरने का नोटिस मिला- इसके बिना उसे इम्तिहान में नहीं बैठने दिया जाएगा।

बस फिर क्या था नोटिस मिलते ही घरवालों ने कहा, ''यहाँ से तो रोज़ जाती थी कि कॉलेज जा रही हूँ वहाँ किसी यार के साथ घूमने चली जाती होगी इसलिए हाज़िरी कम हो गयी।''

उसकी मम्मी बोलीं, 'हम तो सोचते थे बेटी सीधी-सादी है, पर देखो क्या गुल खिलाये हैं।'

बेचारी अलका की एन.सी.सी. की दलील घुट कर रह गयी। बिना किसी सुनवाई के उसे शादी की सजा सुना दी गई। एक हफ़्ते के भीतर आनन-फानन में उसकी शादी पक्की हो गई और अब महीने भर में शादी भी है उसे इम्तिहान में भी नहीं बैठने दिया गया। मुझे ये सब सुनकर बहुत अफ़सोस हुआ, मैं जानती थी अब अलका से मिलना नहीं हो पाएगा। उसके बारे में हम सब दोस्त बहुत दिनों तक बातें करते रहे। और धीरे-धीरे समय के साथ उसे भूलते भी गए। पता था कुछ कर नहीं सकते।

तीन साल बाद जब मैं एम. ए में थी तो मैंने उसे अचानक बच्चों और पति के साथ ख़रीदारी करते हुए सरोजिनी नगर में पाया। वो मुझे नहीं देख रही थी और मैं अपने आप को संयत कर रही थी कि बात करूँ या नहीं। थोड़ी देर के कशमश के बाद में उसके सामने खड़ी थी। मुझे देखते ही उसका मुँह खुला और आँखें बड़ी हो आईं। फिर खुश होते हुए बोली तू यहाँ , ''आई लव यू यार।'' मैं कुछ बोल नहीं पाई सिर्फ मुस्कराती रही। गोदी के बच्चे को पति को पकड़ाती हुई बोली, ''इसे पकड़िए'' । उसने मुझे गले लगाया, तो उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। सभी लोग हमें देखने लगे। उसने पति से कहा ये मेरी बहुत पुरानी सहेली है। मैं थोड़ी देर इससे बात कर लूं। शायद उसका पति भी समझ गया और वो बच्चों को लेकर खिलौने की दुकान में घुस गया।

हम दोनों बाहर एक बेंच पर बैठ कर बतियाने लगे। उसने कहा आज में कितने सालों बाद अपनी सहेली से मिल रही हूँ। मेरी आवाज़ भी भर्राने लगी। उसे एक भरपूर शादी-शुदा जिंदगी जीते हुए देख कर मुझे ख़ुशी हुई।

उसने पूछा, ''तू क्या कर रही है?'' मेरे बताते ही वो बोली, ''मैं भी पढ़ना चाहती थी पर देख बी.ए भी नहीं कर पाई।'' मैंने कहा तू अपनी पढ़ाई पूरी कर पाती अगर थोड़ा सा हिम्मत दिखाती। उसने कहा शायद मेरे भाग्य में यही लिखा था। इसी तरह की बातों का सिलसिला शुरू हुआ और उसके पति के दुकान से बाहर निकलते ही ख़त्म। मैंने उसके बच्चों को प्यार किया और फिर उनसे विदा ली ।

इसके बाद मैं सीधे कपड़ों की दुकान में घुस गयी। पर पूरे समय मेरे दिमाग में यही उथल-पुथल थी कि लड़की के जीवन में भाग्य, कर्म और हिम्मत में क्या सामजस्य है?

kusumknapczyk@gmail.com

पुस्तकें जो हमें मिलीं

यादों के पाखी
(हाइकु-संकलन)
सम्पादक:
रामेश्वर काम्बोज
'हिमांशु',
डॉ भावना कुँअर,
डॉ हरदीप कौर
सन्धु
अयन प्रकाशन,
1/20 महरौली,
नई दिल्ली-110030
मूल्य : 200 रुपये,

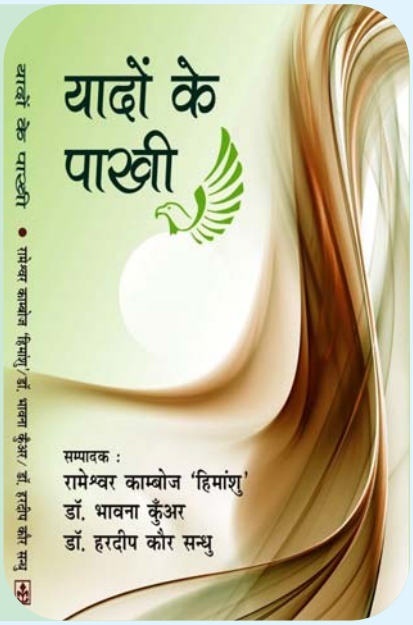

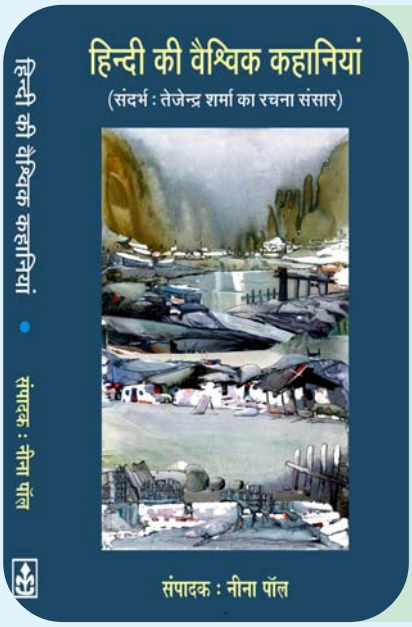

हिन्दी की वैश्विक
कहानियाँ
संपादक-नीना पॉल
(सन्दर्भ:
तेजेन्द्र शर्मा का
रचना संसार)
अयन प्रकाशन
1/20,
महरौली,
नई दिल्ली-110030
मूल्य:
300.00 रूपये

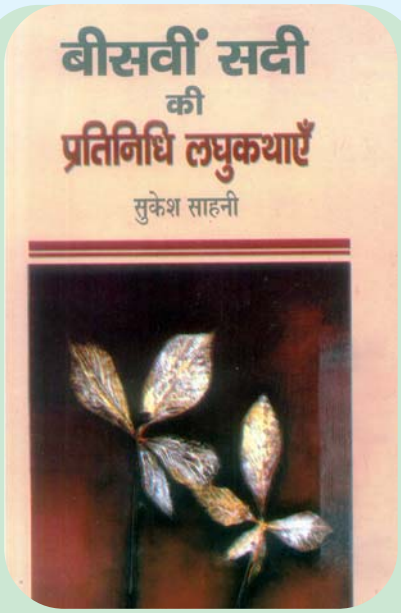

बीसवीं सदी की प्रतिनिधि
लघुकथाएँ
सम्पादक : सुकेश साहनी
अयन प्रकाशन, 1/20 महरौली,
नई दिल्ली-110030
मूल्य : 250 रुपये

दीवार में रास्ता (2012),
लेखक: तेजेन्द्र शर्मा
वाणी प्रकाशन,
नई दिल्ली-11002.
पृष्ठ संख्या 180,
कीमत: रु.250/-

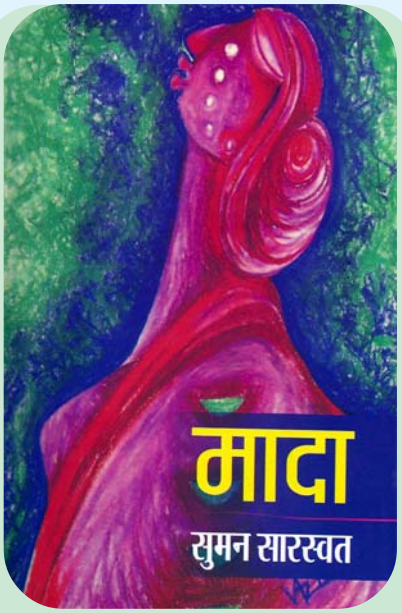

मादा (कहानी संग्रह)
लेखिका -सुमन सारस्वत
प्रकाशक- शिल्पायन
10295, लेन नंबर 1, वैस्ट
गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली-
110032 मूल्य 200.00

हम साथ-साथ हैं   हमसफ़र पत्रिकाओं के नये अंक.......

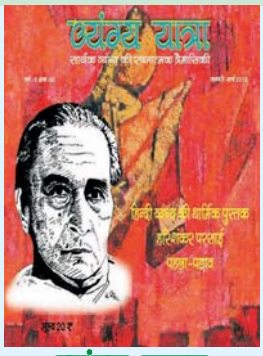

व्यंग्य यात्रा

सार्थक व्यंग्य की रचनात्मक
त्रैमासिकी
संपादक -प्रेम जनमेजय
सम्पादकीय सम्पर्क
73, साक्षर अपार्टमेंटस,ए-
3,पश्चिमी विहार,
नई दिल्ली -110063

वाङ् मय

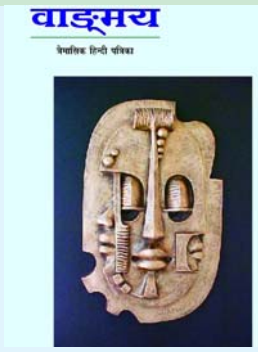

त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका
संपादक-
डॉ.एम.फ़िरोज़ अहमद
205, ओहद रेजीडेंसी,
नियर पान वाली कोठी,
दोदपुर रोड, सिविल लाइन्स,
अलीगढ़-202002

पुष्पगंधा

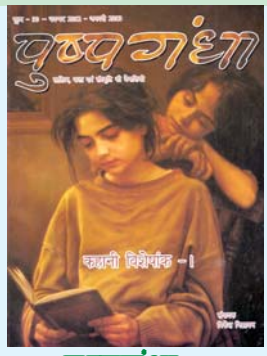

साहित्य, कला एवं संस्कृति की त्रैमासिकी
कहानी विशेषांक-1
संपादक-विकेश निझावन
557-बी, सिविल लाइंस,
आई.टी.आई बस स्टॉप के सामने,
अम्बाला शहर -134003
(हरियाणा)

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545   Service to humanity

'हिन्दी चेतना' के मुख्य संपादक श्री श्याम त्रिपाठी को सरस्वती सम्मान

मिसिसागा, में अक्तूबर २७, २०१२ को पोर्ट क्रेडिट सैकेंडरी स्कूल के सभागार में हिन्दी राइटर्स गिल्ड का चौथा वार्षिकोत्सव आयोजित किया गया। हर वर्ष इस उत्सव के लिए एक मुख्य विषय चुना जाता है और पूरा कार्यक्रम उस पर आधारित होता है। इस वर्ष के कार्यक्रम में साहित्य की विभिन्न विधाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया था।

कार्यक्रम का आरम्भ मानोशी चैटर्जी द्वारा सुमधुर सरस्वती वंदना से हुआ। संचालिका लता पांडे ने दर्शकों, मुख्य अतिथियों और अन्य गणमान्य लोगों का स्वागत करते हुए हिन्दी राइटर्स गिल्ड की गत वर्ष की मुख्य गतिविधियों के बारे में जानकारी दी। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री बिधु शेखर झा, जो कि न केवल मैनीटोबा के एमपीपी हैं बल्कि एक सिद्धहस्त लेखक और कवि भी हैं, का मंच पर सम्मान किया गया। बिधु जी ने हिन्दी राइटर्स गिल्ड के प्रयासों की सराहना करते हुए जीवन में भाषा के महत्त्व पर बल दिया। उन्होंने कहा कि हिन्दी में संकीर्ण विचारधारा को छोड़ कर विदेशी भाषा के शब्दों भी अपनाना चाहिए ताकि भाषा का विकास होता रहे परन्तु साथ ही बलपूर्वक कहा कि भाषा को प्रदूषित मत होनें दें। उदाहरण देते हुए ''इंटरनेट'' शब्द को स्वीकार और बात-बात में ''बिकॉज़'' को अस्वीकार करने को कहा। कार्यक्रम के मुख्य आकर्षण ''रश्मिरथी'' पर आधारित नाटक पर बोलते हुए उन्होंने स्व. रामधारी सिंह ''दिनकर'' के साथ कुछ व्यक्तिगत अनुभव बताए और रश्मिरथी से कुछ अंश सुनाए।

कार्यक्रम में हिन्दी के लिए समर्पित और नि:स्वार्थ सहायता करने वालों, एमपीपी दीपिका दामेर्ला, हिन्दी टाइम्स मीडिया के प्रमुख राकेश तिवारी और स्टार बज़्ज़ मीडिया ग्रुप के प्रमुख भूपिन्दर विरदी को सम्मानित किया गया। दीपिका जी ने भारत में आधुनिक परिवेश में हिन्दी को निम्नवर्ग की भाषा की अवधारणा की निंदा करते हुए कहा कि हमें इस मनोवृत्ति के प्रति सजग रहना होगा और उन्होंने आशा व्यक्त की कि वह हिन्दी राइटर्स गिल्ड के साथ जुड़ी रहेंगी। भूपिन्दर जी ने कुछ ही शब्दों में हिन्दी राइटर्स गिल्ड की सराहना की। राकेश तिवारी जी ने हिन्दी राइटर्स गिल्ड के संगठन में समानता के महत्व की सराहना की और कहा कि वह संस्था की सहायता के लिए तैयार हैं।

अगले चरण में कैनेडा से प्रकाशित होने वाली अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' के संस्थापक एवं मुख्य संपादक श्री श्याम त्रिपाठी जी को सरस्वती सम्मान से सम्मानित किया गया। यह सम्मान हिन्दी की नि:स्वार्थ सेवा करने वालों को प्रदान किया जाता है और त्रिपाठी जी इसके पाने वाले दूसरे व्यक्ति हैं।

कार्यक्रम के साहित्यिक चरण का संचालन श्रीमती भुवनेश्वरी पांडे ने किया। टोरोंटो में पहली बार किसी मंच से दो लघुकथाएँ पढ़ी गयीं। पहली लघुकथा ''ऊँचाई'' रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी की थी और पढ़ने वाली थीं डॉ. इंदु रायज़ादा; दूसरी लघुकथा सुमन कुमार घई की ''विवशता'' थी और इसे पढ़ा मीना चोपड़ा ने। तीन हास्य-व्यंग्य के कवियों सुरेन्द्र शर्मा, काका हाथरसी और ओम प्रकाश आदित्य की रचनाओं का पाठ क्रमश: निर्मल सिद्धू, पाराशर गौड़ और संजीव अग्रवाल ने किया। इसके पश्चात बच्चों ने अपनी संगीत कला का प्रदर्शन करते हुए मंच सँभाला। उमंग सक्सेना ने बाँसुरी का शास्त्रीय वादन किया और अर्जुन पांडे ने अपनी कला तबले पर दिखलायी। कार्यक्रम के प्रथम भाग की अंतिम प्रस्तुति में मानोशी चैटर्जी ने गीतांजली के दो अंशों का हिन्दी अनुवाद का भावपूर्ण काव्यपाठ किया।

मानोशी चर्टजी ने रश्मिरथी के संदर्भ के बारे में बतलाया। नाटक का मंचन बहुत भावपूर्ण और कुशलता से हुआ। इस नाटक का निर्देशन डॉ. शैलजा सक्सेना ने किया था। एक घंटे इस नाटक में पता ही नहीं चला कि समय कम बीत गया। इसके बाद सभा के विसर्जन में धन्यवाद ज्ञापन विजय विक्रांत जी ने दिया।

-सुमन कुमार घई (कैनेडा)

अन्तर्राज्यीय लघुकथा सम्मेलन में हिन्दी चेतना के लघुकथा विशेषांक का विमोचन

27 अक्तूबर 2012 को सरकारी सीनियर सेकेण्डरी स्कूल बनीखेत (डल्हौजी) , हिमाचल के सभागार में 'पंजाबी साहित अकादमी लुधियाना' के वरिष्ठ उपाध्यक्ष एवं हिन्दी पंजाबी लघुकथा के समर्थ समालोचक डॉ. अनूप सिंह ने इक्कीसवें अन्तर्राज्यीय लघुकथा सम्मेलन के अवसर पर हिन्दी चेतना त्रैमासिक(मुख्य सम्पादक श्याम त्रिपाठी -कनाडा , सम्पादक- डॉ.सुधा ओम ढींगरा- यू एस ए) के लघुकथा विशेषांक का विमोचन किया । इस अवसर पर इस विशेषांक के सम्पादक द्वय सुकेश साहनी - रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु,हिन्दी पंजाबी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.श्याम सुन्दर दीप्ति(प्रो मैडिकल कॉलेज अमृतसर एवं सम्पादक मिन्नी त्रैमासिक पंजाबी) एवं डॉ. सूर्यकान्त नागर (इन्दौर) भी उपस्थित थे ।

नीरज गोस्वामी को सुकवि रमेश हठीला स्मृति सम्मान प्रदान किया गया

शिवना प्रकाशन ने हिन्दी के सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार श्री नीरज गोस्वामी को एक गरिमामय साहित्यिक आयोजन में वर्ष 2012 का सुकवि रमेश हठीला स्मृति सम्मान प्रदान किया गया । श्री नीरज गोस्वामी को सुकवि रमेश हठीला सम्मान के तहत मंगल तिलक कर एवं शाल, श्रीफल, सम्मान पत्र भेंट कर सम्मानित किया गया । श्री गोस्वामी का परिचय शिवना प्रकाशन के पंकज सुबीर ने प्रस्तुत किया । कार्यक्रम के दूसरे चरण में श्री इक़बाल मसूद की अध्यक्षता में एक मुशायरे का आयोजन किया गया जिसमें देश भर के शायरों ने ग़ज़लें पढ़ीं । नई दिल्ली के सुलभ जायसवाल ने मुशायरे का प्रारंभ करते हुए 'बेसहारा मुल्क लेकर चीखता रहता हूँ मैं' ग़ज़ल पढ़कर श्रोताओं की दाद बटोरी । मुम्बई के अंकित सफर ने युवाओं की भावनाओं को 'बढ़ाने दोस्ती गालों पे कुछ पिम्पल निकल आये' के माध्यम से बखूबी व्यक्त किया । नई दिल्ली के प्रकाश अर्श ने 'मैं लम्हा हूँ कि अर्सा हूँ कि मुद्दत न जाने क्या हूँ बीता जा रहा हूँ' सहित कई शेर पढ़े । काश्मीर के कर्नल गौतम राजरिशी ने अपने शानदार अंदाज़ में 'चाँद इधर छत पर आया है थक कर नीला नीला है' जैसी शानदार ग़ज़लें पढ़कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया । इन्दौर के शायर प्रदीप कांत ने 'थोड़े अपने हिस्से हम बाकी उनके किस्से हम' सहित छोटी बहर पर लिखी गई अपनी कई ग़ज़लें पढ़ीं । भोपाल के शायरों तिलक राज कपूर तथा डॉ सूर्या बाली ने अपनी ग़ज़ल 'बाज़ार ने गरीबों को मारा है इन दिनों' पढ़कर श्रोताओं की खूब दाद बटोरी । सम्मानित कवि नीरज गोस्वामी की मुम्बइया शैली की ग़ज़लों को श्रोताओं ने खूब सराहा । 'जिसको चाहे टपका दे, रब तो है इक डान भीडू' तथा 'क्या हुआ पांव गर ढलान पर है' शेरों को श्रोताओं ने खूब पसंद किया । उन्होंने तरन्नुम में भी कुछ ग़ज़लें पढ़ीं । मुशायरे का संचालन कर रहे शायर डॉ आज़म ने अपनी ग़ज़ल 'अजब हाल में महफिलें हैं अदब की' पढ़ी । हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि शशिकांत यादव ने आपने चिरपरिचित अंदाज़ में ओज तथा देशभक्ति के गीत एवं छंद पढ़े । सैनिकों तथा राजनीतिज्ञों की तुलना करते हुए उन्होंने कविता का सस्वर पाठ किया । मुशायरे की अध्यक्षता कर रहे इक़बाल मसूद ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि ये नयी पीढ़ी हिन्दी और उर्दू के बीच पुल बनाने का काम कर रही है । उन्होंने सभी शायरों की ग़ज़लों को सराहा । श्री मसूद ने अपनी कई सुप्रसिद्ध ग़ज़लें पढ़ीं । 'इस उम्र में जो फिसले मुश्किल से संभलता है' शेर को श्रोताओं ने जमकर सराहा । देर रात तक चले इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में हिन्दी उर्दू के साहित्यकार, पत्रकार, एवं श्रोता उपस्थित थे । आभार पत्रकार श्री शैलेष तिवारी ने व्यक्त किया ।

एशियन कम्यूनिटी आर्ट्स ने ब्रिटेन के हिन्दी साहित्य का उत्सव मनाया

एशियन कम्यूनिटी आर्ट्स ने लंदन के नेहरू सेन्टर में एक अनूठे कार्यक्रम का आयोजन किया जिसमें ब्रिटेन के हिन्दी साहित्य का उत्सव मनाया गया। उत्सव के केन्द्र में कथाकार तेजेन्द्र शर्मा का लेखन रहा। इस कार्यक्रम में तेजेन्द्र शर्मा की कहानी एक ही रंग की नाट्य प्रस्तुति भोपाल के मंच कलाकार ने की । कार्यक्रम में चार पुस्तकों तेजेन्द्र शर्मा के नये कहानी संग्रह (दीवार में रास्ता - वाणी प्रकाशन), 13 साक्षात्कारों के संकलन (बातें - शिवना प्रकाशन, संपादक मधु अरोड़ा), तेजेन्द्र शर्मा पर 25 आलोचनात्मक लेखों का संकलन (हिन्दी की वैश्विक कहानी-अयन प्रकाशन, संपादक नीना पॉल), रचना समय विशेषांक - तेजेन्द्र शर्मा की 12 कहानियां - संपादक हरि भटनागर) एवं ग़ज़ल सीडी जिसमें तेजेन्द्र शर्मा की 8 ग़ज़लें शामिल की गई हैं - का विमोचन किया गया।

10 युवा कथाकारों की पुस्तकों का लोकार्पण

इंडिया इन्टरनेशनल सेंटर एनेक्सी में हुआ समारोह

नई दिल्ली। वरिष्ठ कथाकार एवं हंस के संपादक राजेंद्र यादव ने कहा कि हर रचना किसी न किसी स्तर पर आत्मकथा होती है। इनमें सदियों से चली आ रही वर्जनाओं का विरोध भी विभिन्न स्तरों पर दिखता है। उन्होंने ये बातें इंडिया इंटरनेशनल सेंटर एनेक्सी में सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली की ओर से आयोजित समारोह में हिन्दी के दस युवा कथाकारों की पुस्तकों के लोकार्पण समारोह में कही। उन्होंने कविता के उपन्यास 'मेरा पता कोई और है', मनीषा कुलश्रेष्ठ के कहानी संग्रह 'गंधर्व गाथा' और अजय नावरिया के कहानी संग्रह 'यस सर' की विशेष रूप से चर्चा की। इस लोकार्पण समारोह में हिन्दी के शीर्ष आलोचक नामवर सिंह, वरिष्ठ कथाकार मैत्रेयी पुष्पा, वरिष्ठ पत्रकार आलोक मेहता और सामयिक प्रकाशन के निदेशक महेश भारद्वाज ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

समारोह में पांच उपन्यास जिनमें शरद सिंह का 'कस्बाई सिमोन', कविता का 'मेरा पता कोई और है', रजनी गुप्त का 'कुल जमा बीस', सरिता शर्मा का 'जीने के लिए' और राकेश कुमार सिंह का 'हुल पहाड़िया' का लोकार्पण किया गया। इन किताबों के लेखकों में सरिता शर्मा और कविता ने अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में भी लोगों को बताया। पांच युवा कहानीकारों के कहानी संग्रहों में मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'गंधर्व-गाथा', जयश्री राय की 'तुम्हें छू लूं जरा', पंकज सुबीर की 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियां', अजय नावरिया की 'यस सर' और प्रेम भारद्वाज की पुस्तक 'इंतजार पांचवें सपने का' का लोकार्पण हुआ। पांचों कहानीकारों ने अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में तथा लेखक से जुड़े अपने अनुभव पाठकों और पुस्तक प्रेमियों को बताए।

कथाकार मैत्रेयी पुष्पा ने लोकार्पण के बाद अपने संबोधन में दो लेखिकाओं शरद सिंह के उपन्यास 'कस्बाई सिमोन' और रजनी गुप्त के उपन्यास 'कुल जमा बीस' पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा कि इन उपन्यासों में आज के परिदृश्य में प्रेम को स्पष्ट किया गया है। तरह-तरह के भाषाई तेवर भी देखने को मिलते हैं। उन्होंने कहा कि साहित्य उन्हीं का होता है जो वंचित और शोषितों के लिए लिखते हैं।

वरिष्ठ पत्रकार आलोक मेहता ने एक साथ पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सामयिक प्रकाशन के महेश भारद्वाज को बधाई दी। उन्होंने कहा कि यह काम एक मायने में ऐतिहासिक है। इन कहानियों और उपन्यासों में भारत में जितनी विविधता है, जितनी विसंगतियां हैं उन सबका बड़ा कैनवास खींचा गया है। इनमें महानगर से दूर ग्रामीण इलाकों की समस्याओं को भी सामने रखा गया है। उन्होंने कहा दूरदराज इलाकों में लोगों के अंदर पुस्तक पढ़ने की भूख और प्यास है इसलिए गांव-गांव में पुस्तकें पहुंचाने का अभियान चलाया जाना चाहिए।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए हिन्दी के शीर्ष आलोचक नामवर सिंह ने एक साथ 10 किताबों के प्रकाशन को एक शानदार प्रयास बताया। उन्होंने कहा कि एक साथ इतनी पुस्तकों के लोकार्पण से पता चलता है कि हमारे युवा आजकल पूरे साहस, ईमानदारी से लिख रहे हैं।

कार्यक्रम का संचालन सुशील सिद्धार्थ ने किया तथा अतिथियों का स्वागत सामयिक प्रकाशन के प्रबंध निदेशक महेश भारद्वाज ने किया।

खचाखच भरे लोकार्पण समारोह में पुरूषोतम अग्रवाल, ज्योतिष जोशी, दुर्गाप्रसाद गुप्त, विष्णु नागर, सत्यकाम, गीताश्री, वंदना राग, वर्तिका नंदा, सुमन केसरी, जितेन्द्र श्रीवास्तव, भारत भारद्वाज, साधना अग्रवाल, ब्रजेश के. बर्मन, जैसे हिन्दी जगत के जाने-माने लेखक, पत्रकार, प्रशासनिक अधिकारी और गणमान्य हस्तियाँ मौजूद थीं।

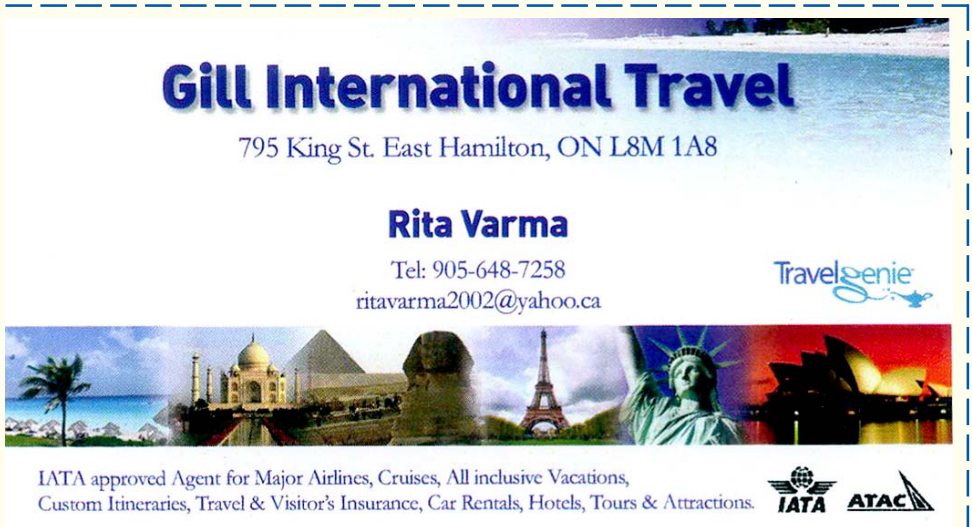

अधेड़ उम्र में थामी कलम

वनीता सेठ

''**जिन** मात-पिता की सेवा की, उन तीर्थ धाम कियो न कियो ।'' यह है हमारी भारतीय सभ्यता, जहाँ माता-पिता की सेवा से बढ़कर पुण्य कर्म और कुछ भी नहीं माना गया । परिवार में माता-पिता, बड़े बुजुर्गों की छत्र-छाया में उच्च आदर्श जीवन के लिए एक मार्ग दर्शन की विशेष भूमिका रही है और उससे भी बढ़कर उनका अनुपम स्नेह और आशीर्वाद।

विज्ञान ने इतनी प्रगति की है, कि चाँद-सितारों की तो बात ही क्या है । इस नये युग में नई पीढ़ी भी उसी तेज़ रफ्तार से नवीन विचारधारा से ज़िन्दगी की दौड़-धूप में बहुत आगे बढ़ रही है । समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलना एक आवश्यकता है । इसी के साथ अपनी सभ्यता व संस्कृति बनाये रखना भी उतना ही अनिवार्य है ।

आज सारे विश्व में भारतीयता का बोलबाला है कि भारतीय बच्चे हर क्षेत्र में विद्वान् और गुणवान हैं । इस बात से हमारा सर गर्व से ऊँचा हो जाता है । किन्तु इस सफलता के पीछे उन माता-पिता की साधना, श्रम, और धैर्य है । यह सब कुछ उन्हीं के पुण्य प्रयासों की वजह से है, जिन्होंने अपने तन-मन-धन से कमाई हुई पूंजी को अपने भविष्य को उज्ज्वल करने के लिए समर्पित कर दिया ।

जब मैं कनाडा में नई-नई आई थी तो अक्सर बड़े-बूढ़े लोगों से कहते हुए सुना करती थी कि 'हमारे माता-पिता के चाहे कितने ही बच्चे हों, सभी को अच्छी तरह सँभालते है परन्तु वही बच्चे बड़े होकर अपने बूढ़े माता-पिता के लिए थोड़ा सा भी समय नहीं निकाल पाते हैं।' इस बात की गहराई को मैं तब न समझ सकी किन्तु अब इसे बहुत अच्छी तरह समझती हूँ क्योंकि आज यह घर-घर की कहानी है ।

विदेश में हमारे बुजुर्गों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । विशेषतय:, परिवार को छोड़ना, अपनी आयु के लोगों की मित्रता, नया रहन-सहन, वेश- भूषा,भाषा, संस्कृति, सभ्यता, आचार, विचार, खान-पान आदि को अपनाना बहुत बड़ी चुनौती है । उन्हें नए सिरे से जीवन की शुरुआत करनी पड़ती है । उनका जीवन बिलकुल नीरस हो जाता है । माता-पिता की आँखों के तारे उनके साथ जो दुर्व्यवहार करते हैं और उनके लिए जितने असंवेदनशील हो जाते हैं एक बहुत ही दुखदायी कहानी है । वे अपने जीवन की उन्नति और अपने नये परिवार की प्रगति के सामने अपने माता-पिता को भूल जाते हैं । परिणामत: वयोवृद्ध लोग अकेले घर की चार दीवारी में टेलीविज़न के सामने एकाकी जीवन बिताते हैं । सर्दियों के मौसम में तो उनकी हालत और भी ख़राब हो जाती है । सदी और बर्फ के कारण वे कहीं घूमने-फिरने नहीं जा पाते । उनका स्वास्थ खराब हो जाता है और वे रोग ग्रस्त होकर बिस्तर पर पड़े रहते हैं । उन्हें आधुनिक इन्टरनेट, कम्प्यूटर आदि की भी जानकारी नहीं होती ।

कुछ गिने- चुने परिवारों में बुज़ुर्ग लोगों की हालत बहुत अच्छी है । जहाँ उन्हें परिवार का प्यार, उनकी पूरी देखभाल, उनका आत्मसम्मान, और उनको आदर दिया जाता है । वे परिवार के अभिन्न अंग हैं । अपने आपको धनी मानते हैं और अपने बच्चों के दीर्घ आयु की कामना करते हैं । उनका जीवन बहुत ही आनन्दमय और सुखमय है ।

मेरे विचार से इस समस्या का हल निकालना चाहिए । हमें अपनी संस्कृति और संस्कारों का आदर करना चाहिए । और अपने बुजुर्गों को अपने परिवार का अभिन्न अंग समझना कर, उनका सम्मान और उनकी सेवा करनी चाहिए । हम उस देश के वासी हैं जहाँ श्रवणकुमार जैसे सुपुत्र जन्मे थे । हमें इन आदर्शों को अपने बच्चों को बताना चाहिए । क्योंकि कल हम भी बुज़ुर्ग होंगे । और जैसा अपने माता-पिता के साथ करेंगे वैसा ही हमारे बच्चे भी हमारे साथ करेंगे । हमारी सामाजिक संस्थाओं को इस दिशा में अपने बुजुर्गों की इस शोचनीय हालत सुधारने के लिए ठोस कदम उठाने पड़ेंगे । स्थानीय सरकार भी इस कार्य में हमारी सहायक हो सकती है ।

नव अंकुर

ममता शर्मा

सुकुमार अरुण का स्वागत

नव कुसुम खिले नव पल्लव भी,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
चित चोर बयार चली अल्हड़,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
शृंगी भृंगी उठे मृग शावक,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
पक्षी करें कलरव कोलाहल,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
कहीं दूर अजान लगी छत पर ,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
मंदिर की घंटियाँ बजीं ज़ोर ,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
गैया दें मीठा श्वेत दुग्ध ,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
बछड़ों के मुख पर श्वेत फेन ,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
बालों के अभी अधखुले नेत्र ,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
बाबू जी का कर्कश तेज़ सा स्वर
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
पृथ्वी ने ओस से मुँह धोया ,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
चेतनता ले जग जाग उठा,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
थम गया नीर प्रतिबिम्ब उकेर,
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥
मैं जगी रही सम्पूर्ण रात्रि
सुकुमार अरुण से मिलने को ॥

बुढ़ापा कोई अभिशाप नहीं

चित्रांश सक्सैना

बड़ों के लिये हमारी इज़्ज़त, प्यार, उनके लिये आदर ये केवल एक ही देश है पूरे विश्व में वो है हमारा भारत। जहाँ बड़ों के सिरहाने नही बल्कि उनके कदमों में बैठा जाता है, उनके पैर छुए जाते हैं, उनसे आशीर्वाद लिया जाता है । बड़े जो अपने छोटों को जो इतना प्यार देते हैं इतना स्नेह देते हैं, उनकी लम्बी उम्र की कामना करते हैं, वो देश है हमारा भारत.... आज क्या इस देश में हमारे बुज़ुर्गों को भी वही स्नेह, वही प्यार उनके बुड़ापे में मिल पाता है । शायद नहीं....

एक पेड़ जो उम्रभर अपने मालिक को छाया और फल देता रहता है, चाहे कितनी भी धूप हो या बारिश, ये जानते हुये भी कि एक दिन जब वो बूड़ा हो जायेगा तो वही मलिक उसको काट देगा। पर पेड़ तब भी कभी स्वार्थी नहीं बनता । आज के इस युग में बड़े लोग उस पेड़ की तरह हैं जो अपने बच्चों को बिना किसी परेशानी को देखते हुये उनकी परवरिश करते हैं उनको प्यार देते हैं और उसके बदले में वो कुछ नहीं माँगते।

गीतकार विष्णु सक्सेना जी ने बहुत सही लिखा है कि –

''जिसको देखो वो सज़ा देता है,
दोस्त बनकर के दगा देता है,
वो तो माँ-बाप का है दिल वरना
मुफ्त में कौन दुआ देता है।''

आज के इस युग में कोई किसी का सगा नहीं है, यहाँ तक कि अगर आप भिखारी को भी रुपये ना दें तो वो दुआ नही देता पर सही मायने में वो हमारे माता-पिता ही हैं, जिनको आप कितनी भी गालियाँ दे लें पर उनके होठों से केवल दुआ ही निकलती है ।

अपना भारत आज जिस संस्कृति के लिये जाना जाता है वही उसके विपरीत आज क्यों हो रहा है। आज हमारे कई हिस्सों मे जब माता-पिता बूढ़े हो जाते हैं तो उनको उस घर में वो सम्मान नहीं मिलता जिसके वो हकदार हैं । कई जगह तो उन बूढ़े माता-पिता को घर से निकाल कर किसी वृद्धाश्रम में डाल दिया जाता है, ये कह कर कि आप अब हमारी ज़िन्दगी में अवरोध डाल रहे हैं। उनको घर में बोलने का मौका नहीं देते हैं । आज कुछ जगह घर के बँटवारे को लेकर बूढ़े माता-पिता को बाहर निकाल दिया जाता है ।

एक बच्चा जब पैदा होता है तब वो अपने माता-पिता के बिना रह नहीं सकता था, वही बेचा आज बड़े होकर उनके साथ ना रहने की बात करता है । जिन माता-पिता ने उस बच्चे को हाथ पकड़कर चलना सिखाया था वही बच्चा आज उनके बुढ़ापे में उनका साथ देने से इनकार कर दे रहा है ।

माता और पिता दोनों ही बच्चे के जीवन में अपनी अलग अहमियत रखते हैं, पर वही बच्चे उनके बुढ़ापे में उनकी उस अहमियत को भूल जाते हैं ।

माँ के अन्दर जो ममता होती है वो दुनिया के किसी प्यार में नहीं मिल सकती । अगर बच्चे उस माँ को नहीं समझ पाते तो जरा सोचिये क्या बीतती होगी उस बूढ़ी माँ पर।

माँ पर तमाम शेर लिखने वाले शायर मुन्नवर राणा जी कहते है–

माँ इस तरह मेरे गुनाह को धो देती है,
जब बहुत गुस्से में होती है तो रो लेती है ॥

जिस बच्चे को उसके पिता ने अपने कन्धों पर बैठा कर झूले झुलवाये थे, आज वही बच्चा अपने पिता के झूलते कन्धों का सहारा बनने में कतरा रहा है । उस बूढ़े पिता से प्यार की दो बात करने के लिये उसके पास समय नहीं है । जो पिता अपने बेटे के बचपन के हर एक लम्हे को नहीं भूल पाता, अब वो बुढ़ापे में उन लम्हों को सोच कर ही जीवन काट रहा है।

डॉ. कुँअर बैचेन जी की कुछ पंक्तियां हैं कि–

अंगुलियाँ थामके खुद चलना सिखाया था जिसे
राह में छोड़ गया राह पे लाया था जिसे।
उसने पोंछे ही नहीं अश्क मेरी आँखों से,
मैंने खुद रो के बहुत देर हँसाया था जिसे।
अब बड़ा हो के मेरे सर पे चढ़ा आता है,
अपने काँधे पे कुँअर हँस के बिठाया था जिसे।

भगवान ने भी ये वृद्धावस्था बहुत अजीब बनाई है, जिसमें इंसान को अपने प्रियजनों से केवल थोड़े प्यार की आस होती है उनकी बूढ़ी आँखें इस अपनेपन की प्यासी रहती हैं, जिसके सहारे वो इस अवस्था को बिना किसी शिकायत के हँसते हुये गुज़ार सकते हैं। माता-पिता चाहे कितने भी बड़े हो जायें वो अपने बच्चों के लिये ईश्वर के बराबर हैं, जिनका घर कहीं और नहीं बल्कि उनका परिवार है। मगर फिर भी उस बूढ़े दिल की प्यास को बेचे समझ कर भी नासमझ बनते हैं और बुढ़ापे में उनका साथ छोड़ देते हैं। इस बात पर शबीना अदीब जी की कुछ पंक्तियाँ हैं कि –

दिल आईना भी है, काबा भी है, तेरा घर भी
हमारे दिल को कभी तोड़ कर नहीं जाना,
मिला है घर नया माँ-बाप की दुआ से तुम्हें
पुराने घर में इन्हें छोड़ कर नहीं जाना ॥

आज पूरे भारत में ऐसे कई केंद्र हैं जो ऐसे बूढ़े लोगों का दर्द बाँटते हैं उन्हें एक नई ज़िन्दगी देने की कोशिश कर रहे हैं। पर असल मायने में उनकी ज़िन्दगी उन संस्थाओं में नहीं बल्कि उनके परिवार में है, उनसे मिले सम्मान में है, उनसे मिले प्यार में है। शायर कलीम केसर जी ने इस प्यार को कुछ इस तरह बयां किया है कि –

अगर टूटा हुआ चश्मा मेरा बनवा दिया होता
तो मैं अच्छे शगुन अच्छे महूरत देख सकती थी ।
मुझे कब शौक़ दुनिया देखने का था मेरे बच्चे
मगर चश्मा लगा कर तेरी सूरत देख सकती थी॥

chitranshh@gmail.com

विलोम चित्र काव्यशाला

चित्र को उल्टा करके देखें

चित्रकार : अरविंद नारले
कविः सुरेन्द्र पाठक

किसी घने जंगल में बैठा, चकित हो एक सपेरा
देखा खिड़की के जब भीतर, लटक गया उसका चेहरा!
सोच रहा है अपना जीवन! 'यह धंधा क्यों अपनाया'
बाबा, दादा जो करते थे, धंधा मैंने उनसे सीख लिया
साँप पकड़ना, बीन बजाना, लोगों का दिल बहलाना
इस धंधे में जो मिल जाय, उन लोगों से वर पाना
कैसे पकड़े जाएँ साँप, यह जाने तौर तरीके
उनको काबू कर लेता जो, ना आते हाथ किसी के
कुछ दिन पहले इस जंगल में, आया एक विदेशी नेक
बहुत कमाया पैसा इसने, नमूना उसको दे हर एक
साँप पकड़ते देर हो गयी, आज हो गया अँधेरा
सोचा, रात्रि अब यहीं गुजारूं, चल दूंगा जब होगा सवेरा

अरविंद नारले

सुरेन्द्र पाठक

चित्र काव्यशाला

चित्रकार : अरविंद नारले

हिन्दी चेतना के अक्टूबर-दिसम्बर 2012 अंक की चित्र काव्यशाला में प्रकाशित चित्र पर प्राप्त हुईं रचनाएँ ।

बाबा

किसी शहर में सड़क किनारे जम कर बैठा है इक बाबा
हर व्यक्ति का भविष्य जानता, करता है वह इसका दावा।
पीछे पोस्टर पर लिखा है, कितना मशहूर यह है ज्योतिषी
दिलवा देता वह सब चीज़ें, जिनको दुनिया है खोजती।
आते-जाते बहुत देखते, कुछ लालची फँस हैं जाते
खुश होते इसकी बातें सुन, मगर बाद में पछताते।
सुख के पीछे भागे दुनिया, सुख कहाँ सब को मिल पाता
सुख दूजे की थाली का लड्डू, जो सबको बड़ा नज़र है आता।
आज मिला न जो सुख उसको, शायद उसको कल मिल जाए
यहीं आशाएँ हर कोई लेकर, इन बाबाओं के पास वह आए।
इस बाबे के सामने बैठा, हम जैसा ही एक व्यक्ति
निश्चित सुख को ढूंढ़-ढूंढ़ कर, क्षीण हो गयी इसकी शक्ति।
भविष्य तेरा बहुत उज्ज्वल है, यही कहेगा इसको बाबा
शनि देव और राहू ने, बुरी तरह से तुमको दाबा।
इन ग्रहों को तू खुश करले, जो कहता हूँ कर उपाय
खुश होकर मुझे दो दक्षिणा, हँसते-हँसते घर को जाओ

सुरेन्द्र पाठक (कैनेडा)

बदल नहीं सकता

किस्मत का सितारा कब चमकेगा
हाथ की रेखाएँ देख बताएँ ।
कहते हैं, शनि की साढ़सती है
इसका उपाय भी बताएँ ।
राहु-केतु वक्र है, मंगल रुष्ट
उसके लिए पूजा-पाठ कराएँ।
लक्ष्मी रूठी है कब से
कुछ भी कर उसे मनाएँ।
पंडित बोले- यजमान इतना कुछ
मैं ठीक कर सकता तो अपना
भाग्य न बदल लेता ....
हाथों की लकीरें पढ़ सकता हूँ
उन्हें बदल नहीं सकता .....

दर्पण शर्मा (अमेरिका)

विदाई

पंडित जी ज़रा मुझे बता दो भाग्य में क्या बदा है
क्या कभी भी टल पायेगी आई जो आपदा है

क्या विदेश में बैठा बेटा लौट के घर आएगा
क्या मृत्यु-शय्या पर लेटी माँ कभी देख वह पाएगा

रोती बहन भी तकती राह है कब आएगा भाई
कहती है भाई बिन बापू , न होगी मेरी विदाई

माँ-बेटी दोनों की विदाई मैं बूढ़ा न कर पाऊँगा
और बताकर यहाँ की विपदा, न उसको तड़पाऊँगा

आप ही करदो कोई उपाय,जल्दी वह वापिस आए
ऐसा न हो उसके बिन यहाँ तीन विदाई हो जाए !

अनीता शर्मा , शिंघाई (चीन)

रेखा

'रेखा' के काटते-काटते चक्कर
घिस गई चप्पल हमारी
'रेखा' फिर भी न मिली
बन गए हम घनचक्कर ।

'रेखा' जी बोली एक बार
सूरत न सीरत तुम्हारी
इससे पहले कि
मेरा सैंडल उठे
हो जाओ
तुम यहाँ से रफूचक्कर ।

बोला था मैं-सूरत-सीरत का
क्या काम प्यार के अथाह सागर में
बोलो तो
आसमान से तारे बिखेर
दूँ तुम्हारे आँचल में ।

पंडित जी बतलाएँ
'रेखा' को कब घर ले आएँ
'रेखा' रेखा ही बन न जाए
हाथ में कभी न आए ।

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

आख़िरी पन्ना

भारत से एक वरिष्ठ और प्रतिष्ठित साहित्यकार का 'हिन्दी चेतना' को लेकर फ़ोन आया और उन्होंने फ़ोन पर ही मुझे डाँटने के लहजे में बात की। आपत्ति थी कि हिन्दी चेतना विदेशों की पत्रिका हो कर भारत की तरफ़ क्यों देखती है? उनकी आपत्ति उचित नहीं लगी...भारत ही तो हिन्दी चेतना का मूल तत्त्व है, प्रेरणा है। मैं और त्रिपाठी जी भारत से ही तो आएँ हैं। उसी धरती से प्राप्त किया ज्ञान यहाँ बाँट रहे हैं। भारत साथ लाए हैं, भारत हृदय में है तो उस तरफ देख क्यों नहीं सकते? उनकी बात सुन कर बहुत हैरानी हुई, अगर बच्चे नौकरी के कारण अलग-अलग शहरों या विदेश में चले जाएँ तो फिर वापिस घर मिलने न आएँ? अपनी माँ और देश को भूल जाएँ? देश और परिवार की तरफ़ देखने का उन्हें कोई हक़ नहीं? यह कैसी सोच है? हिन्दी चेतना किसी देश की पत्रिका नहीं, हिन्दी की चेतना है, चेतना को देश और सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता, भाषा और साहित्य की पत्रिका है। अंतरजाल ने हिन्दी भाषा और साहित्य का वैश्वीकरण कर दिया है। हिन्दी चेतना में पूरे विश्व के साहित्यकारों के साथ भारत के रचनाकारों की रचनाएँ छपती हैं, फ़िर भारत की ओर देखना कैसा?

अगर सिर्फ़ भारत के रचनाकार इसमें छपते और पत्रिका भारत में ही प्रकाशित होती और हम इसे विदेश की पत्रिका कहते तब यह बात उचित थी।

हिन्दी चेतना के किसी भी अंक को उठा लें कभी 60 प्रतिशत विदेशों के और 40 प्रतिशत भारत के और कभी 50-50 प्रतिशत भारत और विदेशों के रचनाकार इसकी शोभा बढ़ाते हैं। निर्भर करता है रचनाएँ कहाँ से और कैसीं आई हैं? पूरी विनम्रता के साथ यह सब अपने अग्रज लेखक को बताने के बाद मुझे लगा कि वे संतुष्ट हो जायेंगे। मेरी बहुत बड़ी भूल थी, बात और आगे बढ़ गई। उसका सारांश यह है कि उन्हें छोड़कर अन्य रचनाकारों की रचनाओं को हिन्दी चेतना में छापना, उन्हें देखना-परखना, भारत की ओर देखना था जो गलत था। उनकी ओर देखा होता तो सब सही था। यह कैसी मानसिकता है? ऐसे अग्रज साहित्यकार युवा पीढ़ी का क्या पथप्रदर्शन करेंगे?

पापा कहते थे, बेटा हम अपने स्वार्थ और प्रभुत्व के लिए कई बार सही को भी गलत कह देते हैं....तुम जिस कार्य को ठीक समझो करते रहना। इस बात की परवाह किए बिना कौन क्या कहता है?

मित्रो, हिन्दी चेतना वैश्विक पत्रिका है, भारत और विदेशों के रचनाकार सभी इसमें छपेंगे, रचनाओं के स्तर से अनुपात का जमा-घटाव हो सकता है पर लक्ष्य वही रहेगा जिसे साध कर श्याम जी इसे 14 वर्ष पहले अस्तित्व में लाए थे, कि पत्रिका भारत और विदेशों के बीच भाषा और साहित्य का सेतु बने और साहित्यकारों को एक ऐसा मंच प्रदान करे जो साहित्यिक राजनीति और गुटबंदी से परे वैश्विक भाईचारे का हो.....

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आपके आशीर्वाद और साथ की ज़रूरत है और फ़ोन करने वाले अग्रज साहित्यकार के लिए बस इतना ही कहना चाहती हूँ.....

हमको उनसे है वफ़ा की उम्मीद
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है ।

आपकी

सुधा ओम ढींगरा

नया साल बहुत सी उम्मीदों के साथ आता है। उम्मीदें जो जीने के लिये सबसे बड़ा ईंधन हैं, जो हवा, पानी और भोजन की तरह ही आवश्यक हैं। एक और नया साल आ गया है, अवसर है कुछ संकल्प लेने का जिन्हें इस वर्ष पूरा किया जाना है ।